योगविद्या

वर्ष 6 अंक 8
अगस्त 2017
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2017

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 60 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अन्दर के रंगीन फोटो 1: स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द; 2: अन्तरराष्ट्रीय योग दिवस 2017; 3: चातुर्मासिक यौगिक अध्ययन सत्र के विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम; 4: स्वामी निरंजनानन्द एवं स्वामी सत्यसंगानन्द

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥12.15॥

अर्थ–जिससे संसार उद्विग्न नहीं होता और जो संसार के द्वारा उद्विग्न नहीं होता, तथा जो हर्ष, ईर्ष्या, भय और चिंता से मुक्त है, ऐसा मनुष्य मुझे प्रिय है।

सच्चा भक्त कभी किसी प्राणी को मन, वाणी या कर्म से आहत नहीं करता। वह सब प्राणियों को अभय-दान देता है, इसलिए कोई प्राणी उससे भयभीत नहीं होता। वह पूरे संसार को अपना शरीर, अपनी आत्मा समझता है, फिर वह संसार से उद्विग्न कैसे हो सकता है? वह न तो दूसरों को चोट पहुँचाता है, न ही दूसरों के शब्दों या कर्मों से क्षुब्ध होता है।

हर्ष, ईर्ष्या, भय और चिंता जैसी मनोवृत्तियाँ उसी तरह भक्त के अंत:करण से स्वत: चली जाती हैं, जैसे दावानल होने पर पशु-पक्षी स्वत: जंगल छोड़ देते हैं।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 6 अंक 8 • अगस्त 2017
(प्रकाशन का 55 वाँ वर्ष)

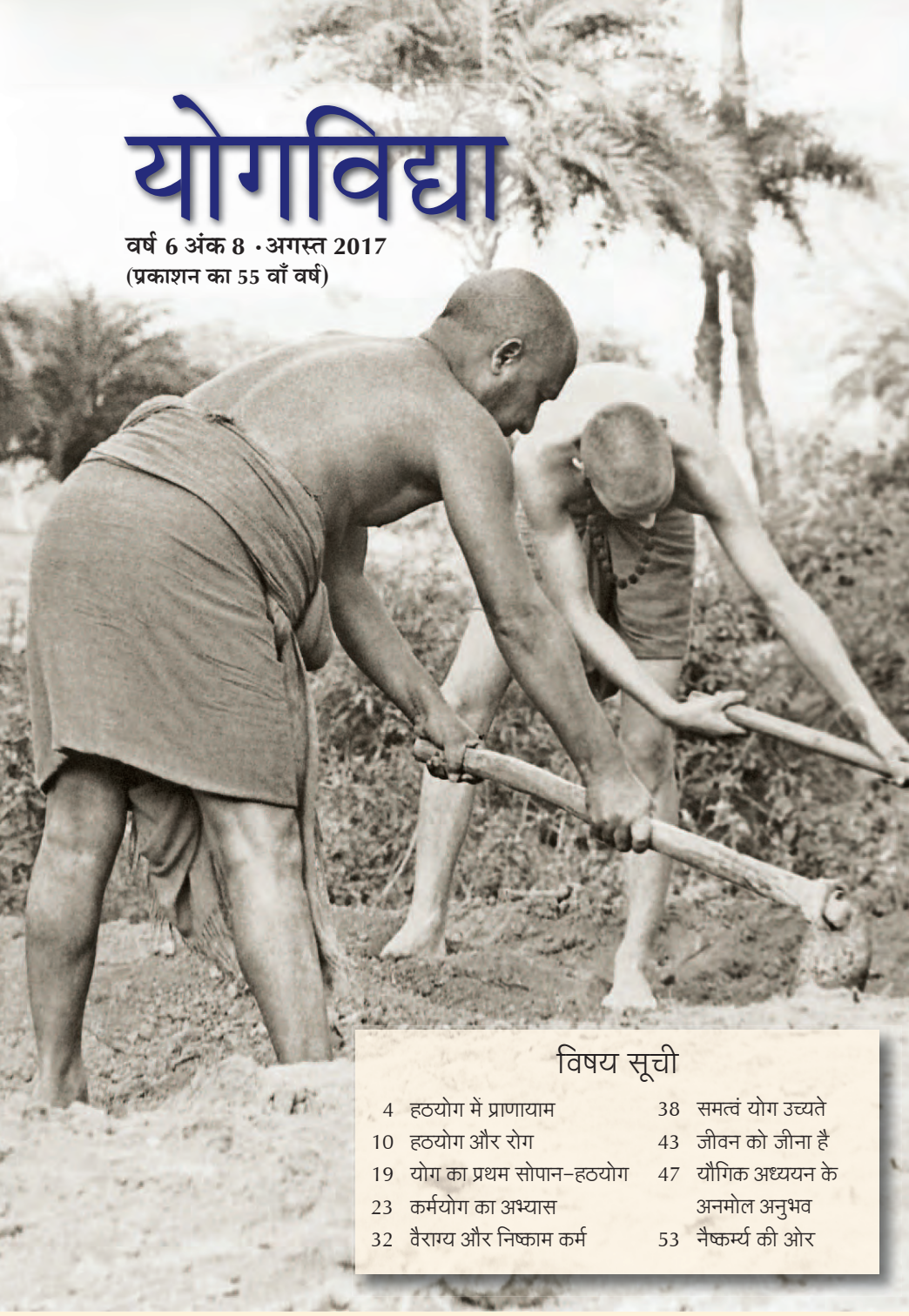

विषय सूची

4 हठयोग में प्राणायाम
10 हठयोग और रोग
19 योग का प्रथम सोपान–हठयोग
23 कर्मयोग का अभ्यास
32 वैराग्य और निष्काम कर्म
38 समत्वं योग उच्यते
43 जीवन को जीना है
47 यौगिक अध्ययन के अनमोल अनुभव
53 नैष्कर्म्य की ओर

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

हठयोग में प्राणायाम

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सम्पूर्ण जगत् की शक्ति के सिद्धान्त का नाम ही प्राण है। प्राण जीवनदाता है। प्राण सर्वव्यापक है, चाहे स्थिरावस्था में हो अथवा संचलित रूप में। क्षुद्रतम जीवन से लेकर विशालतम तक, चींटी से हाथी तक, जन्तु से लेकर मनुष्य तक, अविकसित वनस्पति से पूर्णतया विकसित प्राणधारियों तक में समान रूप से यह प्राण विद्यमान है। जिसमें भी जीवन है, जो कुछ भी कार्य करता है, जिसमें भी गति है, वह प्राण का प्रकट रूप है।

प्राण ही आपके नेत्रों की ज्योति है, प्राणशक्ति ही श्रवणेन्द्रियों द्वारा सुनने का कार्य करती है। वाणी में बोलने की शक्ति भी इसी से आयी है और नासिका की घ्राणशक्ति भी इसी से है। मस्तिष्क एवं बुद्धि इसी प्राण शक्ति के आधार पर अपना-अपना कार्य करते हैं। नवयुवती की मुस्कान, संगीत का माधुर्य, सुवक्ता के शब्दों में ओज, प्रेमी के भावभीने उद्‌गारों का हृदयस्पर्शी प्रभाव—ये सभी प्राणशक्ति के ही विभिन्न रूप हैं। अग्नि की दाहकता में इसी शक्ति का वास है। वायु भी प्राणों से ही चलती है। नदियाँ भी प्राणों का आश्रय लेकर ही निरन्तर प्रवाहित रहती हैं। वायुयान भी इसी की शक्ति से आकाश में उड़ते हैं। रेल तथा मोटर कारें भी इसी शक्ति के आधार पर गतिशील रहती हैं। रेडियो की तरंगों का संचार भी प्राणशक्ति के कारण है। इलेक्ट्रॉन भी प्राण का ही रूप है। चुम्बक तथा विद्युत में भी प्राणशक्ति ही तो कार्य करती है। हृदय में रक्त-नलिकाओं द्वारा रक्त-संचालन का कार्य भी प्राणों द्वारा होता है। भोजन पचाने तथा मल-मूत्र त्यागने की प्रक्रिया भी प्राणशक्ति करती है। विचारशक्ति, इच्छाशक्ति तथा क्रियाशक्ति भी प्राण शक्ति के ही रूप हैं। हमारे बोलने, गतिशील होने, लिखने आदि की क्रियायें भी इसी के बल-बूते पर होती हैं। एक स्वस्थ तथा बलवान पुरुष में प्राणशक्ति का बाहुल्य रहता है।

भोजन, जल, वायु तथा सौर ऊर्जा प्राणशक्ति के स्रोत हैं। प्राणशक्ति की आपूर्ति अथवा संचय इन्हीं द्वारा होता है। निरन्तर प्राणायाम के अभ्यास द्वारा योगीजन प्राणशक्ति का अधिकाधिक मात्रा में संचय कर लेते हैं, जैसे विद्युत शक्ति को बैट्री में जमा कर लिया जाता है। जिस योगी ने प्राणशक्ति का संचय अधिक मात्रा में कर लिया होता है, उसके दिव्य तेज की किरणें उसके मुखमंडल के चारों ओर विकीर्ण होती हैं। मानो वे महानुभाव स्वयं एक शक्ति के स्रोत हों जहाँ से प्राणशक्ति स्फुरित होती रहती है। जो भी उन दिव्य तेजोमय योगी के निकट सम्पर्क में आता है, वह भी उनकी प्राणशक्ति ग्रहण करके ओजस्वी हो जाता है। जैसे जल को एक पात्र से दूसरे पात्र में डाला जाता है, वैसे ही प्राणशक्ति एक महान् योगी द्वारा निस्तेज

व्यक्ति में प्रवेश करा दी जाती है। जिस योगी की अन्तर्दृष्टि खुल चुकी है, वह इसे प्रत्यक्ष देख सकता है।

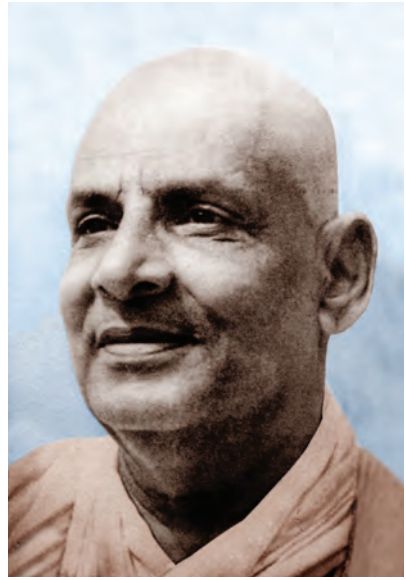

प्राणों का स्वरूप

मनुष्य शरीर में, अन्न से निर्मित अन्नकोष के पीछे प्राणवायु द्वारा निर्मित प्राणमय कोष होता है। सारे शरीर को सुव्यवस्थित रूप से और दक्षतापूर्वक चलाने वाली यही प्राणशक्ति है। यह शक्ति समूचे शरीर में व्याप्त है और स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर को जोड़ने वाली कड़ी है। ये प्राण धागे की तरह सूक्ष्म हैं और जब ये नहीं रहते, तब सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से पृथक् हो जाता है, जिसके फलस्वरूप मृत्यु हो जाती है। वही प्राण जो स्थूल शरीर में शक्ति का संचार कर रहे थे, सूक्ष्म शरीर में सिमट जाते हैं।

श्वास जीवनदाता प्राण का बाह्य रूप है। श्वास स्थूल है, प्राण सूक्ष्म। स्थूल श्वास को वश में करने से आप सूक्ष्म प्राण को भी वश में कर सकते हैं। प्राणायाम का अर्थ प्राणों पर अधिकार पाना है। प्राणायाम का श्रीगणेश श्वास को व्यवस्थित करने से होता है। ऐसा करने से आन्तरिक जीवन सम्बन्धी शक्तियों को वश में किया जा सकता है।

जब श्वास बाहर निकाला जाता है, तब इसे रेचक कहते हैं और जब अन्दर लिया जाता है तब पूरक। जब श्वास की गति रोकी जाती है, तब इस क्रिया को कुम्भक कहते हैं। कुम्भक क्रिया के अभ्यास से जीवन अवधि बढ़ाई जाती है, इससे आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति में वृद्धि होती है। हठयोगियों ने प्राणायाम की विद्या का विस्तार कर इसके भिन्न-भिन्न अभ्यासों को भिन्न-भिन्न प्रकृति वालों की सुविधा के लिए बताया है।

प्राणायाम का अभ्यास

अपने पूजागृह में अपने इष्टदेव की मूर्ति के सामने पद्मासन या सिद्धासन में बैठिए। अपनी नासिका के दायें छिद्र को दायें अंगूठे से बन्द करिए। बायें छिद्र से श्वास को धीरे-धीरे अन्दर लीजिए। बायें छिद्र को दायीं अनामिका से बन्द करिए। श्वास को जितनी देर आसानी से रोक सकें, रोके रखिए। अंगूठे को हटाकर दायें छिद्र से श्वास

धीरे-धीरे बाहर निकालिए। यह आधी क्रिया हुई। अब दायें छिद्र से श्वास अन्दर लीजिए। पूर्ववत् श्वास रोके रखिए। फिर धीरे-धीरे बायें छिद्र से बाहर निकालिए। इन छह अंगों वाली क्रिया से एक प्राणायाम पूरा होता है। ऐसे बीस-बीस बार प्रातः और सायं करिए। संख्या धीरे-धीरे बढ़ाते जाइए।

भावना यह रहे कि दया, प्रेम, क्षमा, शान्ति तथा प्रसन्नता आदि सब दैवी गुण श्वास के साथ-साथ आपके अन्दर प्रवेश कर रहे हैं और काम, क्रोध, लोभ जैसे आसुरी दुर्गुण श्वास के साथ-साथ आपको छोड़ कर बाहर जा रहे हैं। पूरक, कुम्भक और रेचक करते समय ॐ या गायत्री मंत्र का मानसिक जप अवश्य करें।

इस बात का ध्यान रखें कि पूरक, कुम्भक और रेचक करते समय श्वास में किसी प्रकार का अवरोध या असुविधा न हो। न ही दो प्राणायामों के बीच में साधारणतया श्वास लेने की आवश्यकता अनुभव करें। पूरक, रेचक और कुम्भक का उचित अनुपात रहे। इस बात का विशेष ध्यान रखें, तभी सब सफल तथा सरल हो पाएगा। पूरक-कुम्भक-रेचक में ऐसा संतुलन रखें कि न केवल आपको एक प्राणायाम में कोई कठिनाई न हो, बल्कि पूरे अभ्यास में भी असुविधा का भास न हो। सजग अभ्यास से ही पूर्णता आती है। दृढ़ रहिए। पूरक-कुम्भक-रेचक में 1:4:2 का अनुपात वांछनीय है।

प्राणायाम के और भी कई प्रकार हैं। सूर्य भेद और उज्जायी उष्णता उत्पन्न करते हैं, जबकि शीतकारी तथा शीतली ठण्डक। भस्त्रिका से स्थिति प्राकृतिक रहती है। सूर्य भेद से वायु की अधिकता का दोष दूर हो जाता है, उज्जायी से कफ। शीतकारी और शीतली पित्तनाशक हैं, जबकि भस्त्रिका से तीनों दोषों का निवारण हो जाता है।

सूर्य भेद तथा उज्जायी का अभ्यास शीतकाल में करना चाहिए। शीतकारी तथा शीतली का ग्रीष्म ऋतु में। भस्त्रिका सभी ऋतुओं में कर सकते हैं। जिनके शरीर में शीतकाल में भी उष्णता रहती हो, वे शीतली तथा शीतकारी प्राणायाम शीतकाल में कर सकते हैं।

प्राणायाम का प्रयोजन

भारतीय सनातन परम्परा में प्राणायाम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राण का सम्बन्ध मन से है और संकल्पशक्ति के माध्यम से मन का जीवात्मा से सम्बन्ध रहता है और जीवात्मा का विश्वात्मा से। यदि आप प्राणवायु की तरंगों पर नियंत्रण कर पायेंगे तो आप विश्व-प्राण पर अधिकार पाने का रहस्य जान जायेंगे। यदि आपने प्राण को वश में कर लिया तो आप विश्व की सभी स्थूल तथा सूक्ष्म शक्तियों पर अपना अधिकार जमा सकते हैं। योगी इस प्रकार एक सर्वव्यापक शक्ति को ही वश में कर लेते हैं, जो विद्युतशक्ति, चुम्बकीयशक्ति, गुरुत्वशक्ति और विचारशक्ति जैसी सभी शक्तियों का स्रोत है।

जो योगी इस रहस्यज्ञान में निपुण हो जाता है, उसे किसी का भय नहीं रहता, क्योंकि उसका जगत् की सब शक्तियों पर पूरा अधिकार हो जाता है। जीवन में कई मनुष्य अधिक सफल रहते हैं। वे प्रभावशाली होते हैं और सब को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। यह सब प्राणशक्ति का ही प्रभाव है। जो प्रभाव ये लोग अनजाने में, प्रतिदिन दूसरों पर डालते हैं, वही एक योगी स्वेच्छा से, अपनी संकल्पशक्ति द्वारा डालता है।

प्राणायाम के लाभ

प्राणायाम का सम्बन्ध श्वास से रहते हुए भी यह सारे शरीर और सभी आन्तरिक अंगों को व्यायाम का अवसर देता है। यह सब प्रकार के रोगों का नाश करके स्वास्थ्य प्रदान करता है, पाचनशक्ति बढ़ाता है, तेज की वृद्धि करता है, कामवासनाओं को हटाता है और कुण्डलिनी शक्ति को जगाता है।

प्राणायाम के अभ्यास करने वाले का शरीर हल्का, नीरोग तथा सुन्दर होता है। उसकी कण्ठध्वनि बड़ी मधुर होती है। उसके शरीर से सुगन्ध आती रहती है। उसे क्षुधा ठीक लगती है। वह सदा प्रसन्नचित्त रहता है। वह सदैव उत्साहपूर्ण, शक्तिमान, साहसी, स्वस्थ तथा बलवान् रहता है। उस की एकाग्रता-शक्ति अच्छी रहती है।

प्राणायाम द्वारा रोगमुक्ति

प्राणायाम का अभ्यास करने वाले अपने प्राण संचार से रोगों को दूर कर देते हैं। यदि किसी को गठिया रोग हो तो अपने हाथों से उसकी टाँगों की मालिश करें। मालिश करते हुए कुम्भक करते रहें और यह भावना रहे कि आपके हाथों से रोगी के शरीर में प्राणशक्ति का संचार हो रहा है। हिरण्यगर्भ से अपना सम्बन्ध स्थापित कर यह मान लें कि विश्वशक्ति आपके हाथों द्वारा रोगी में प्रवेश कर रही है। रोगी शीघ्र ही कष्ट से मुक्ति तथा शक्ति का अनुभव करने लगेगा। एक-दो बार आप स्वयं इस प्रयोग को आजमाइये। आपका निश्चय और भी दृढ़ हो जाएगा।

सरदर्द, आँतों का दर्द या किसी और रोग का निवारण भी आप मालिश तथा अपनी प्राण शक्ति द्वारा कर सकते हैं। जब आप गुर्दे, तिल्ली, आमाशय या शरीर के किसी और अंग की मालिश करें, तब अपने शरीर के सूक्ष्म अंगों को भी इस प्रकार आज्ञा दे सकते हैं—'ओ जीवन कोशिकाओं! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम अपने-अपने कार्य को भली प्रकार निभाओ।' ऐसा दृढ़तापूर्वक कहने से वे आपकी आज्ञा का पालन करेंगे। उनकी भी अन्तरात्मा होती है। दूसरों में प्राण संचार करते समय मंत्र-पाठ आवश्यक है। ऐसे कई प्रयोग करिए। आपको दक्षता प्राप्त होगी।

प्राणसंचार के इन उपचारों में श्रद्धा, संकल्प, मनोयोग तथा रुचि का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। जब आप अभ्यास और एकाग्रता में उन्नति कर लेते हैं तब आप

अपने स्पर्श मात्र से ही स्वास्थ्य प्रदान कर सकते हैं। और अधिक उन्नति की स्थिति में आप संकल्प मात्र से ही आरोग्य दे सकेंगे। दूरस्थ मित्र को भी आप यहीं बैठे-बैठे प्राणसंचार द्वारा नीरोग कर सकते हैं। बेतार विद्युत की तरह प्राण भी अदृश्य दिशाओं में पहुँच सकते हैं। आप अपनी शक्ति की पूर्ति कुम्भक द्वारा कर सकते हैं। निस्सन्देह इसके लिए दीर्घकालीन, नियमित तथा दृढ़ अभ्यास की आवश्यकता है।

यह तो सोचिए ही नहीं कि दूसरों के उपचार से आपकी अपनी प्राणशक्ति का क्षय होगा। जितनी आपकी क्षति होगी, उतनी ही सृष्टि से नियमानुसार पूर्ति हो जाएगी। यह एक प्राकृतिक नियम है। अत: कृपणता का त्याग करें।

प्राणायाम सम्बन्धी मिथ्या धारणायें

आप गुरु की सहायता बिना साधारण प्राणायाम का अभ्यास तो कर सकते हैं, किन्तु कुम्भक क्रिया को अधिक समय तक करने के लिए गुरु का मार्गदर्शन आवश्यक है।

आप सामान्य प्राणायाम तथा आसन आदि का अभ्यास सावधान रह कर बिना किसी हानि के कर सकते हैं। इसलिए इस सम्बन्ध में लोगों का भय मिथ्या है।

असावधानी तो सर्वत्र हानिकारक है। यदि सीढ़ियों से उतरते भी असावधान रहेंगे तो गिर सकते हैं और हड्डियाँ टूट सकती हैं। रेलवे स्टेशन पर टिकट खरीदने के समय असावधान रहने से पर्स खो बैठेंगे। औषधि मिलाने में भी सावधानी न बरती गई और रोगी को गलत दवाई या अधिक मात्रा में दी गई तो उसके प्राणों पर बन आएगी।

प्राणायाम-अभ्यासी को अपने भोजन का भी विशेष ध्यान रखना होगा। आपका भोजन हल्का, शीघ्र पच जाने वाला तथा पुष्टिकारक होना चाहिए। जीवन में ब्रह्मचर्य अपनाना होगा। कुम्भक के अभ्यास में भी अपनी क्षमता के अन्दर ही रहना होगा। पहले एक-दो मास तो केवल पूरक-रेचक का ही अभ्यास करें। यदि आपने इन नियमों का ध्यान रखा, तो प्राणायाम में कोई भय नहीं रहेगा।

कतिपय निर्देश

प्राणायाम की सफलता के लिए उपयुक्त आसन अनिवार्य है। पर ऐसा भी नहीं है कि किसी आसन पर पूरा-पूरा अधिकार हो जाने से पहले प्राणायाम का अभ्यास आरम्भ ही नहीं कर सकते। आसन के अभ्यास के साथ-साथ प्राणायाम भी चलता रहे। कुछ समय उपरान्त आपको दोनों में सफलता एक साथ ही प्राप्त हो जाएगी।

प्राणायाम के अभ्यास-कक्ष में नमी नहीं होनी चाहिए। हवादार कक्ष ही उपयुक्त है। किसी नदी तट या किसी झील के किनारे भी आप प्राणायाम कर सकते हैं अथवा किसी उद्यान में या खुले आसमान में जहाँ सर्दी अथवा खुली वायु का झोंका न आता हो। ग्रीष्म ऋतु में केवल प्रात:काल की ठण्ढक में प्राणायाम हो सकता है। यदि गर्म हवा चलने लग जाए तो प्राणायाम रोक दीजिए। ग्रीष्म ऋतु में शीतली प्राणायाम का अभ्यास हो सकता है।

पूरक तथा रेचक धीरे-धीरे करिए। जरा भी आवाज न हो। भस्त्रिका, कपालभाति, शीतली या शीतकारी प्राणायाम करते समय मन्द-मन्द शब्द हो सकता है।

प्राणायाम करते समय किसी भी स्तर पर किसी प्रकार का तनाव नहीं पड़ना चाहिए, बल्कि प्राणायाम करते समय आनन्दानुभूति होनी चाहिए। ऐसा भी न हो कि जब तक थकावट महसूस न करें, आप प्राणायाम ही करते रहें। यौगिक क्रियाओं के तुरन्त बाद स्नान भी नहीं करना चाहिए। आधे घण्टे तक विश्राम आवश्यक है।

प्राणायाम अभ्यास के समय इष्ट मंत्र का जप चलते रहना चाहिए। तभी योग सच्चे रूप में निभ पायेगा। ज्ञानदेव, तैलंगस्वामी तथा अन्य योगियों ने प्राण-शक्ति का सुन्दर उपयोग किया था। आप भी ऐसा कर सकते हैं यदि प्राणायाम का अभ्यास सुचारु रूप से हो तो। श्वास में निहित गुप्त-प्राणशक्ति का महत्त्व पहचानिए। योगी बन कर अपने चारों ओर प्रफुल्लता, प्रकाश तथा शक्ति की किरणें विकीर्ण कीजिए।

हठयोग और रोग

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पहले तो आपको यह बतला दूँ कि मैं कहाँ से और क्यों आया हूँ। बिहार में गंगा के किनारे मुंगेर नाम का एक छोटा-सा शहर है, जहाँ मैंने साधना में आठ वर्ष बिताये। उसी जगह महात्मा बुद्ध भी रहे थे, और उन जैसी बड़ी-बड़ी विभूतियाँ रह चुकी हैं। वहीं हमारी एक छोटी-सी कुटिया थी जो अब बढ़कर एक बड़े आश्रम और मिशन का रूप धारण कर चुकी है। मैं वहीं से चार दिनों के लिए आपके पूना शहर में आया हुआ हूँ।

योग की परम्परा

साधु-संन्यासी इस देश में अनादिकाल से होते आये हैं और उनके जीवन का एक ही उद्देश्य रहता है कि मानव-जाति को किस प्रकार से दुःखों से मुक्ति दिला सकें और शान्ति की प्राप्ति करा सकें। सरकारें रोजगार देती हैं, कपड़े की व्यवस्था करती हैं। डॉक्टर लोग दवाई देते हैं और बीमारों की देख-रेख करते हैं। सेना के लोग देश की सुरक्षा के लिए काम करते हैं। हर एक इन्सान, हर एक संस्था के जिम्मे मानव-जाति के किसी हित की सुरक्षा के लिए जिम्मेवारी डाली गई है। उसी प्रकार हमारे देश के महात्माओं के ऊपर एक जिम्मेवारी डाली गई थी। वह जिम्मेवारी यह थी कि मनुष्य का शरीर, उसका मन और उसकी आत्मा, तीनों में जब असन्तुलन हो जाए, तीनों में जब मेल न बैठे, तब उस समय कोई उचित मार्ग उनको बतलाना।

मनुष्य एक ऐसा जीव है जिसमें संयम की, आत्म-नियंत्रण की बहुत कमी रही है। उसका मन बहुत भागता है। मन जानता है कि झाड़ियों में उसे काँटे लगेंगे, फिर भी वहीं भागता है। खड्ढे में जाता है, यह जानते हुए भी कि उसका वहाँ पैर कटेगा। मनुष्य के मन को जब तक सम्हाला नहीं जायेगा तब तक वह निरंकुश और अप्रशिक्षित रहेगा। इसीलिए ऋषि-मुनियों और महात्मा लोगों पर यह जिम्मेवारी डाली गई थी कि ये लोग बार-बार भक्तों, शिष्यों और सत्संगियों को समझायें कि किस प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षण देना है, किस प्रकार अपने को मजबूत बनाना है। इन्हीं तरीकों को लोगों ने इस देश में योग का नाम दिया था। इस योग के बारे में आप लोगों के सामने थोड़ी चर्चा करूँगा।

यह इस देश का सौभाग्य है कि यहाँ मनुष्य के जीवन, मन और व्यक्तित्व को अनुशासित करने के लिए एक बहुत ऊँची प्रणाली हजारों साल पहले इस देश के महात्माओं ने हमें दी थी। अन्य किसी देश का ऐसा सौभाग्य नहीं रहा है। किन्तु कुछ ऐसे कारण हो गये थे कि बीच में हमलोग इसे भूल गये थे। इतना भूल गये

थे कि हमलोगों ने योग का मतलब ही गलत लगा लिया था। इसलिए हम पिछले बीस वर्षों से इस देश और बाहर के देशों के लोगों से मिल रहे हैं और उन्हें समझाने की कोशिश कर रहे हैं कि मनुष्य के स्वास्थ्य हेतु योग एक बहुत ऊँचा तरीका है। इसे प्रत्येक आदमी को करना चाहिए। योग तो एक विद्या है, विज्ञान है, जिसकी बहुत-सी शाखायें हैं। ये शाखाएँ ज्ञानयोग, कर्मयोग, हठयोग, भक्तियोग, राजयोग, मंत्रयोग आदि अनेक नामों से जानी जाती हैं और ये मनुष्य के कमजोर मन को मजबूत बनाती हैं, उसकी नष्ट हुई आत्म-शक्ति को पुनर्जीवित करती हैं तथा उसके दिल और दिमाग में सन्तुलन रखती हैं।

हठयोग

अभी मैं केवल एक शाखा पर बोलने जा रहा हूँ और वह है हठयोग। आज हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान के बाहर बड़े-बड़े डॉक्टर और वैज्ञानिक प्रयोगों में लगे हुए हैं। शरीर की अनेकों बीमारियों को दूर करने के लिए उन्होंने हठयोग पर बहुत शोध किये हैं और उन बीमारियों को दूर करने में योग बहुत सफल साधन सिद्ध हुआ है। इसीलिये आपके सामने हठयोग के बारे में कुछ बातें बतलाने की कोशिश करूँगा।

दुनिया के हर देश में आज उच्च रक्तचाप बहुत प्रचलित है। जैसे पहले के जमाने में महामारियाँ हुआ करती थीं, उसी प्रकार आज उच्च रक्तचाप ने दुनिया में महामारी का रूप ले लिया है। मनुष्य के शरीर के अन्दर जो ग्रन्थियाँ हैं, उनपर उसकी भावनाओं का असर पड़ता है। चिन्ता का, सन्देह का असर पड़ता है। रोज़ की जिन्दगी में हर एक क्षण आदमी के दिमाग में तनाव आते हैं। जो तनाव मस्तिष्क पर पड़ते हैं, वे हृदय में, सारे शरीर में स्थानान्तरित हो जाते हैं। अग्नाशय ग्रन्थि में स्थानान्तरित होता है तो मधुमेह की बीमारी होती है, गुर्दे में स्थानान्तरित होता है तो गुर्दे की बीमारी होती है। यह मैं आपको विज्ञान की बातें बतला रहा हूँ। ऐसा नहीं सोचना कि बीमारी केवल बाहर से आती है, बीमारी मन से भी पैदा होती है। मैं जानता हूँ कि बीमारी बैक्टीरिया और वायरस से होती है, मगर मैं यह भी बता देना

चाहता हूँ कि बीमारी विचार से भी पैदा होती है। आप मानो या न मानो, लेकिन एक-न-एक दिन आपको मेरी बात पर जरूर यकीन होगा।

जब डर, आशंका, क्रोध या चिन्ता का कोई ख्याल आपके दिमाग में आता है, उस समय आपके सारे शरीर में खलबली मच जाती है और विज्ञान के यंत्र इसको दिखलाते हैं। मनुष्य शरीर में दो ताकतें हैं। जैसे कि बिजली में निगेटिव और पॉज़िटिव शक्ति होती है, एक को काट दोगे तो पंखा बैठा रहेगा, बल्ब नहीं जलेगा, मेरा माइक्रोफोन काम नहीं करेगा, वैसे ही शरीर में दो शक्तियाँ हैं जिन्हें हठयोग की भाषा में कहते हैं इड़ा और पिंगला, तंत्र शास्त्र में इसको कहते हैं शिव और शक्ति, और आधुनिक योग की भाषा में कहते हैं प्राण और मन। मन से आदमी सोचता है, जानता है, पहचानता है और प्राण से आदमी चलता है, उठता है, बैठता है, खाता है, पीता है, जीता है। आप बैठकर मेरी बात जो सुन रहे हैं, यह मन और प्राण के संगम की क्रिया है। इसी को हम लोग कहते हैं चाँद और सूरज। आपने कबीर के पदों में पढ़ा होगा 'चाँद सूरज दो बने मसालची, सुरत सुहागिन नाच रही। सतमहल में सारंगी बाज रही।'

चाँद और सूरज के संयोग को ही हठयोग कहते हैं। हठ शब्द दो बीज मंत्रों का जोड़ है, 'हं' और 'ठं'। 'हं' का मतलब होता है सूर्य, और 'ठं' का मतलब होता है चंद्रमा। जब हमारे शरीर में दोनों संतुलित रहते हैं तो इसे हठयोग कहते हैं। हठयोग के अंतर्गत आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध और शरीर को साफ करने वाले षट्कर्म आते हैं। शरीर के अन्दर जो बीमारी मन और प्राण के असन्तुलन से आती है वह हठयोग से दूर की जाती है।

हठयोग में सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है आसन। योगासन कोई कसरत या वर्जिश जैसी चीज नहीं है। आसन का मतलब होता है एक ऐसी शारीरिक स्थिति जिसमें हमारे शरीर के अलग-अलग आंतरिक अंगों पर जोर पड़ता हो। हठयोग में 84 आसन मुख्य हैं, जिनमें थोड़े-से आसनों को लोग आसानी के साथ आरामपूर्वक कर सकते हैं। इन आसनों को करने से हमारे शरीर की अन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर असर पड़ता है। जैसे सर्वांगासन का थायरॉइड ग्रंथि पर, पश्चिमोत्तानासन का पैनक्रियास ग्रंथि पर और शशांकासन का एड्रीनल ग्रंथि पर असर पड़ता है। ये कुछ उदाहरण दे रहा हूँ।

रोगों पर प्रभाव

मान लीजिये किसी व्यक्ति को दमा की बीमारी है। दमा की बीमारी में मरीज को एड्रीनलीन देते हैं। इसी एड्रीनलीन को हमारे शरीर से पैदा किया जा सकता है। हमारे शरीर के अन्दर बहुत-से रसायन पैदा होते हैं, किन्तु बीमारी में उनका निकलना बन्द हो जाता है। दमा के रोगी को सिर्फ एक आसन बतला रहा हूँ, शशांकासन। 5-10 मिनट उसमें रहिये। कुछ समय निरंतर अभ्यास के बाद मरीज को याद भी नहीं रहेगा कि उसे दमा होता था या नहीं। अब इसी आसन में आगे बढ़िए। दोनों

पैरों को आगे फैला लिया और थोड़ा-सा आगे झुककर पैर के अंगूठों को हाथों से पकड़ लिया। यह है पश्चिमोत्तानासन। आगे झुकने से पेट पर दबाव पड़ेगा। पेट में पैनक्रियास ग्रंथि से कई प्रकार के हॉर्मोन पैदा होते हैं, जिनमें से एक का नाम है इन्सुलिन। जब शरीर में इन्सुलिन पैदा नहीं होता, तब हमारे भोजन में शक्कर बिना हजम हुए शरीर में चला जाता है और फिर खून में मिलकर या पेशाब में मिलकर मधुमेह की बीमारी लाता है। पश्चिमोत्तानासन करते-करते इन्सुलिन पैदा होने लगता है और लोग कहते हैं कि हमारा मधुमेह ठीक हो गया।

अब तीसरा उदाहरण देता हूँ। कभी-कभी आपने देखा होगा कि बड़े-बड़े अफसरों और व्यापारियों को स्ट्रेस होने लगता है। काम-काज, व्यापार, परिवार—सब की वजह से स्ट्रेस होता है। जैसे ही उन्हें स्ट्रेस होगा, उनके दिमाग में तनाव पैदा हो जायेगा। अगर उस तनाव को दूर नहीं किया गया तो रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बढ़ेगी। कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बढ़ने से रक्तचाप बढ़ेगा जो आगे जाकर दिल पर चोट करेगा और कोरोनरी-बीमारियों के रूप में उभरेगा। डॉक्टर तुम्हारी जाँच करेगा तो कहेगा कि तुम्हारा कोलेस्ट्रॉल बहुत ज्यादा है, उसे कम करो। जो आदमी नहीं जानते हैं वे दवाई लेकर उसे कम करेंगे। जिनको जानकारी है, वे क्या करेंगे? प्राणायाम। तनाव से कोलेस्ट्रॉल पैदा हुआ, तनाव को कम करने से कोलेस्ट्रॉल कम होगा। यह सिद्धान्त है, जिसे एक-आध में नहीं, कई लोगों में देखा गया है। एक व्यापारी ने मुझसे कहा, मेरा तो कोलेस्ट्रॉल बहुत ज्यादा था, आपने मुझे दो-चार मिनट का प्राणायाम बतलाया, मेरा कोलेस्ट्रॉल कम हो गया, कैसे हुआ? मैंने उससे पूछा, 'तुमने कोई दवाई ली या भोजन में कोई बदलाव किया?' वह बोला, 'नहीं, ऐसा

तो कुछ नहीं किया।' 'तुम मन बहलाने के लिए मसूरी, शिमला या दार्जिलिंग गये थे क्या?' 'नहीं। तब कैसे कम हुआ!' उसने मेरे से पूछा।

मैंने कहा, तुम्हारे कोलेस्ट्रॉल का कारण शारीरिक नहीं, मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक था। इसलिए प्राणायाम ने उसकी भरपाई कर दी। प्राणायाम में हम एक नाक से सांस लेते और दूसरे से छोड़ते हैं, फिर दूसरे से लेते हैं और पहले से छोड़ते हैं या थोड़ी देर के लिए रोकते हैं। इससे मस्तिष्क में अनुकम्पी और परानुकम्पी नाड़ियों के तनाव में कमी आती है जिससे मन में प्रसन्नता होती है, लगता है कि शरीर हल्का और फुर्तीला हो गया है।

हठयोग के आसन और प्राणायाम बीसवीं शताब्दी में रोग-उपचार के साधन बन गये हैं। पिछले वर्ष सितम्बर के महीने में मैं स्विट्ज़रलैण्ड के एक योग सम्मेलन में गया था। वहाँ मुझे पता चला कि स्विट्ज़रलैण्ड में कुछ ऐसे सैनेटोरियम हैं जो आसन और प्राणायाम की शिक्षा देते हैं। मैंने पूछा, यह सैनेटोरियम क्या है भाई? उन्होंने कहा कि जब कोई आदमी सिगरेट-शराब नहीं छोड़ सकता और डॉक्टर उसे बोलते हैं कि तुम छोड़ दो, नहीं तो मर जाओगे, तब उसे सैनेटोरियम में भेजा जाता है, जहाँ उसका मनोवैज्ञानिक उपचार हो सके और वह उस आदत को कम कर सके। मैंने पूछा कि आपके आँकड़े क्या कहते हैं? उन्होंने कहा कि सैनेटोरियम में जबसे आसन और प्राणायाम करवाना शुरू किया है, तब से बाकी सभी मनोवैज्ञानिक उपचार पद्धतियाँ खत्म हो गयी हैं। लोग आते हैं, हठयोग के आसन, प्राणायाम और षट्कर्म करते हैं। पहले तीन-चार आदमी सालभर में वहाँ से ठीक होकर निकलते थे, लेकिन अब ठीक होने वाले लोगों की संख्या काफी हो गई है।

हठयोग में एक क्रिया है जिसे शंख-प्रक्षालन कहते हैं। आप ध्यान से सुनेंगे क्योंकि यह चीज आपके भी काम आएगी। मुँह से लेकर गुदा द्वार तक के पूरे रास्ते को साफ करने की यह क्रिया है। पानी में थोड़ा-सा नमक मिलाते हैं, फिर एक या सवा घंटे के दरमियान सोलह गिलास पानी पीते जाते हैं और निकालते जाते हैं। एक-डेढ़ घंटे के बाद पेट में न भोजन रहता है, न आँतों में मल रहता है, न म्यूकस रहता है, न गन्दा पानी रहता है, न अम्ल रहता है। जैसे आप अपने घर की नाली को विम लगाकर रगड़-रगड़ कर साफ करते हैं, वैसे ही आपका पाचन तंत्र पूरे का पूरा नीचे से लेकर ऊपर तक एकदम साफ हो जाता है।

जब आपका पेट, छोटी आँत और बड़ी आँत साफ हो जाएँ, आपके शरीर में मल नाम की कोई वस्तु न रहे, तो आपको कितना अच्छा, कितना हल्का महसूस होगा। यह शंख प्रक्षालन की क्रिया मुख्यत: उनलोगों को दी जाती है जिनके शरीर में महीनों का नहीं, बल्कि वर्षों का मल जमा हुआ है। ऐसी क्रियाओं ने ही सैनेटोरियम के मरीजों में आश्चर्यजनक परिणाम दिखाए।

हमलोगों ने मधुमेह पर शिविर किए हैं, जिनमें सौ प्रतिशत अच्छा परिणाम निकला है। जिसे चिकित्सा विज्ञान में बहुत जिद्दी और खराब बीमारी कहते हैं, उस मधुमेह को योग के अभ्यास द्वारा केवल रोका ही नहीं जा सकता, बल्कि उसे जड़-मूल से हटाया जा सकता है। मधुमेह का मरीज यदि आसन-प्राणायाम सीखकर नियम से अभ्यास करेगा तो वह केवल थोड़े दिन के लिए ही नहीं बल्कि बीमारी से पूर्णत: मुक्त हो सकता है।

मेरा सम्बन्ध अनेक लोगों से है जो हिन्दुस्तान में योगोपचार पर शोध कर रहे हैं। जिस शोध से मेरा प्रत्यक्ष संबंध रहा है, उसका विषय है योग का हृदय रोगों पर प्रभाव। यह काम बिहार में हो रहा है, जिसके लिए सरकार की तरफ से भी अनुदान मिला है। पटना मेडिकल कॉलेज में हृदय रोग विभाग के अध्यक्ष, डॉ. श्रीनिवास के साथ यह शोध हुआ। पाँच साल में हजारों लोगों को देखा गया, उसकी रिपोर्ट भी बनी है, जिसके आधार पर मैं आप लोगों के सामने कहता हूँ कि हृदय में इस्कीमिया हो, ऐन्जाइना हो या किसी भी प्रकार की कोई तकलीफ हो, अगर नियमपूर्वक योग के अभ्यासों को किया जाए तो आप निश्चित रूप से उस खतरे से छुट्टी पा सकते हैं।

इस प्रकार हठयोग में रोगोपचार की बहुत-सी सम्भावनायें हैं। कुछ आसन ऐसे हैं जिन्हें हम अपने दैनिक जीवन में नियमित रूप से कर सकते हैं। इनमें से एक है सूर्य-नमस्कार। बच्चों, महिलाओं और ज्यादा उम्र के लोगों के लिए यह श्रेष्ठ आसन है। चाहे वह यकृत की बीमारी हो या श्वसन की या आँतों की, वह इसके अभ्यास से निश्चित रूप से दूर हो सकती है।

स्वयं को अधिक स्वस्थ रखने के लिए, अपने स्वास्थ्य को वैज्ञानिक ढंग से बनाने के लिए योग के विषय में और ज्यादा जानना होगा और योग के अभ्यासों को नियमपूर्वक करना होगा। योग का अभ्यास 2-3 घंटे नहीं, 10-15 मिनट होता है।

यह 10-15 मिनट का योगाभ्यास आपके हेल्थ इन्श्योरेंस के प्रीमियम की तरह है, जो जीवनभर आपके काम आने वाला है।

बच्चों के लिए योग

जो आखिरी बात मैं बोलना चाहता हूँ वह आपके लिए नहीं, आपके बच्चों के लिए है। बच्चे जब आठ-नौ साल के होने लगते हैं तो उनकी रीढ़ की हड्डी के सबसे ऊपरी हिस्से में स्थित पीनियल ग्रंथि का क्षय होने लगता है। जैसे ही यह पीनियल ग्रंथि खत्म हुई, बच्चे में यौन परिपक्वता के लक्षण आने लगते हैं। उसकी यौन ग्रन्थियाँ सक्रिय होने लगती हैं और फिर उसका व्यक्तित्व असंतुलित होने लगता है। इस देश में हजारों वर्ष पहले एक प्रणाली बनाई गई कि जब बच्चा सात-आठ साल का हो उसको तीन चीजें सिखलाना—पहला मंत्र, दूसरा सूर्य की उपासना और तीसरा प्राणायाम। हमारे यहाँ सूर्य को देवता मानते हैं। देवता उसे कहते हैं जो हमें वरदान देता है। सूर्य से प्रात:काल हमें क्या मिलता है? किसी भी वैज्ञानिक से पूछियेगा तो वह बतलाएगा कि उगते हुए सूर्य से जितनी मात्रा में अल्ट्रावॉयलेट किरणें तुम्हें मिलेंगी उतनी किसी भी मशीन से सौ साल में भी नहीं मिलेगी। वही अल्ट्रावॉयलेट किरणें जो हमारे शरीर को बचपन से मिलती हैं, वे बुढ़ापे तक मदद करती हैं। सूर्य की किरणें हमारे शरीर की त्वचा को अनेकों विटामिन प्रदान करती हैं और आँखों को रोशनी देती हैं।

अब ये तीन प्रकार के अभ्यास सात-आठ साल की उम्र में करने को इसलिए कहे जाते थे कि पीनियल ग्रन्थि के क्षय को रोका जा सके। यदि एक बच्चे की पीनियल ग्रन्थि का 10 साल की उम्र में क्षय होता है तो 11 साल से वह यौन सजगता में आ जाता है। यदि उस बच्चे की पीनियल ग्रन्थि 14-15 साल तक स्वस्थ रहे, तो वह 15-16 साल में उस सजगता में आता है। हो सकता है आपको लगे कि यौन परिपक्वता का जल्दी या देरी से होना कोई बड़ी बात नहीं। लड़का चाहे 10 साल में युवक हो जाए या 16 साल में, क्या फर्क पड़ता है। मगर जहाँ तक शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक संतुलन का सवाल है तो यह बात निश्चित है कि बच्चा यदि 10 साल की बजाय 16 या 18 साल की उम्र में परिपक्व हो तो उसका संतुलन, उसका स्वयं पर नियंत्रण कहीं बेहतर होगा। प्राणायाम में इतनी शक्ति है कि वह एक बच्चे के जीवन की यौन भावनाओं को 6-7 साल आगे-पीछे कर सकती है। जब उसको आगे-पीछे कर सकती है तो निश्चित रूप से वह हमारी आयु में भी परिवर्तन कर सकती है। इतनी बड़ी चीज जो प्राणायाम के द्वारा हमलोगों में हो सकती है, उसे हमें ठीक ढंग से समझना है।

योग के लिए संस्थागत आधार

आज मैं आप लोगों के सामने आया हूँ और मुझे आशा है कि मेरे यहाँ आने के बाद जितने लोगों को योग के विषय में अधिक रुचि नहीं रही होगी, उन्हें हो जानी

चाहिए। यहाँ के समर्थ अधिकारियों से तथा अन्य लोगों से भी आग्रह करूँगा कि योग को संस्थागत दर्जा दिलाने के बारे में जरूर सोंचेगे, योग के विद्यालय और केन्द्र बनायेंगे। आज सबेरे मुझसे किसी नवयुवक ने पूछा था, योग के बारे में हिन्दुस्तान के लोगों और हिन्दुस्तान के बाहर के लोगों के विचार में आपको क्या अंतर मालूम पड़ता है? मैंने कहा कि हिन्दुस्तान में योग को मानने वाले पाश्चात्य देशों की तुलना में कहीं अधिक हैं, लेकिन योग को जैसा सुव्यवस्थित, संगठित, संस्थागत रूप पश्चिम ने दिया है, वैसा यहाँ नहीं है।

मैं हर साल यूरोप जाता हूँ। सब देशों के मुख्य शिक्षक-प्रशिक्षक इकट्ठे होते हैं। योग की शिक्षा और पाठ्यक्रम पर चर्चा होती है। सरकारी विभाग सहायता करते हैं। योग को संस्थागत संरक्षण देना हर समर्थ व्यक्ति का दायित्व है। जैसे हमलोगों के यहाँ हर जगह पर सांस्कृतिक संस्थाएँ होती हैं, क्लब होते हैं, मनोरंजन केन्द्र होते हैं, स्विमिंग पूल होते हैं, उसी प्रकार हमलोगों को सोचना होगा कि जनकल्याण के लिए हमलोग किस प्रकार योग को संस्थागत संरक्षण और स्थायित्व दे सकें। यदि हम दे पाएँगे तो यह देश दुनिया को मार्गदर्शन दे सकता है।

इसीलिए मैं देश के कोने-कोने में घूमता हूँ। मैं जानता हूँ कि योग में, धर्म में, महात्माओं में आप लोगों की भक्ति है। आप लोग महात्माओं के पास जाते भी हैं और सीखते भी हैं, किन्तु इतना ही काफी नहीं है। योग एक विषय है, विज्ञान है। इसको सीखने और सिखलाने के लिए वैसा ही इन्तजाम होना चाहिए, जैसा किसी अन्य शैक्षणिक विषय के लिए किया जाता है। मुंगेर से पूना आकर कुछ दिन में यहाँ हम आपको योग नहीं सिखला सकते। बस पाँच-दस आसन, दो-चार प्राणायाम

सिखला सकते हैं। 15-20 बीमारों से बातचीत करके कुछ सुझाव बतला सकते हैं। उसमें दो-चार को फायदा होगा, दो-चार को नहीं भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में योग को एक स्थायी रूप कैसे दिया जा सकता है?

अहंकार के साथ नहीं बोलता, लेकिन यह सच है कि मुझे यूरोप भर में योग-प्रशिक्षण को व्यवस्थित करने का एक प्रकार से सुअवसर मिला है। करीब 70 हजार शिक्षकों का निर्देशन और मार्गदर्शन करता हूँ भारत से। सबका एक क्रमबद्ध प्रशिक्षण है। पाश्चात्य देशों में व्यवस्था करना आसान है, पर इस देश में बहुत कठिन। वैसे योग में तो यह कठिनाई नहीं आनी चाहिए, क्योंकि इसके सिद्धान्त अनेक हुए हैं। हठयोग के सिद्धान्त बने हुए हैं, राजयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के सिद्धान्त बने हुए हैं। उन सिद्धान्तों को लेकर 10-20 आदमी भी एक जगह बैठकर यदि चिन्तन करें कि किस तरह से इस चीज को हम स्थायी रूप दे सकते हैं जिससे कि लोग आएँ और सीखें, तो कुछ ठोस काम हो सकता है। पर वास्तव में होता क्या है? हम किसी स्थान गये, वहाँ एक योग मित्र मंडल बना। 5-10 सज्जन, 5-10 माताएँ शुरू में आते हैं, पर फिर धीरे-धीरे लोग छूटने लगते हैं। इसका कारण क्या है? हम उस संगठन को शैक्षणिक रखने की कोशिश नहीं कर रहे हैं। उस संगठन को हम उस ढंग से देखने की कोशिश नहीं करते जैसे हम किसी अन्य विद्या को देखते हैं।

आज से 50 साल पहले मनोविज्ञान का क्या प्रभाव था? नहीं के बराबर। लेकिन आज यह एक अन्तरराष्ट्रीय विषय बन गया है, इसकी पच्चासों शाखायें हैं, जबकि मनोविज्ञान के पास इतना मसाला नहीं जितना योग के पास है। जहाँ मनोविज्ञान समाप्त होता है वहाँ से योग की शुरुआत होती है। मनोविज्ञान सिर्फ मानसिक लक्षणों की बात करता है जबकि योग सम्पूर्ण मन के लिए है। इस गहरी विद्या के अध्ययन के लिए, इस विद्या के विकास के लिए भारत में प्रतिभाशाली लोगों को आगे आना चाहिए। इस पर विचार करना चाहिए फिर अपने ढंग से जिसका जितना सामर्थ्य है, उसके मुताबिक इसको आगे बढ़ाना चाहिए।

यह जो योगविद्या हमारे पूर्वजों की थी, क्या यह उन्हीं लोगों के लिए थी जो काँटों पर सोते थे या नाइट्रीक एसिड पीते थे? नहीं, यह एक-एक बच्चे के लिए है, एक-एक स्त्री और पुरुष के लिए है। यह केवल ब्रह्मचारी और संन्यासी के लिए नहीं है, बल्कि उन सबके लिए है जो दु:खी हैं, जो रोगी हैं, जो असंतुलित हैं। योग उन सभी गृहस्थों के लिए है जो शरीर, मन और आत्मा की पीड़ा से व्याकुल हैं।

ये थोड़े-से शब्द जो आपके सामने प्रस्तुत किये, आपको इस दिशा में कुछ सोचने के लिए जरूर प्रेरित करेंगे। मैं पूना में योग के बारे में बतलाने नहीं आया, बल्कि इसलिये आया हूँ कि योग को यहाँ पर अच्छी तरह से व्यवस्थित और संगठित करना है, जैसा कि हमलोगों ने बिहार में किया है।

–11 दिसम्बर 1970, पूना

योग का प्रथम सोपान–हठयोग

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमारे गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी हमसे कहा करते थे कि योग तीन श्रेणियों में बँटा हुआ है–शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। शारीरिक योग हठयोग कहलाता है, मानसिक योग राजयोग कहलाता है और जो योग आध्यात्मिक है, क्रियायोग कहलाता है। इस प्रकार हमारे गुरुजी ने साधना की दृष्टि से तीन योगों को महत्त्व दिया–हठयोग, शरीर के लिये; राजयोग, मन के लिये और क्रियायोग, आध्यात्मिक प्रतिभा को विकसित करने के लिये। ये तीन योग साधनात्मक हैं, जिन्हें हम साधना के माध्यम से अपने जीवन में स्थापित करते हैं, इनके अनुभवों को प्राप्त करते हैं, अपने जीवन में परिवर्तन को लाते हैं। रोगों से मुक्ति पाकर, अपने शरीर को स्वस्थ बनाकर फिर हम मन के साथ अपना काम शुरू करते हैं। जब मन संभलता है और हम गहराई में अन्दर जाते हैं और आत्मान्वेषण शुरू करते हैं, तो वह है योग का आध्यात्मिक पक्ष। ये योग के तीन साधन हुए।

पहले साधन के रूप में है हठयोग। हठयोग प्रथम योग है जिसका सम्बन्ध शरीर के साथ है। इसका प्रयोजन शरीर को स्वस्थ करना, शरीर की ऊर्जाओं को बढ़ाना और शरीर के विकारों को समाप्त करना है। 'ह' और 'ठ', ये दो अक्षर वास्तव में हठयोग के प्रयोजन की ओर संकेत देते हैं। हठ का मतलब यहाँ पर जिद्द नहीं होता है, बल्कि इसमें प्राण अर्थात् शारीरिक ऊर्जा और चित्त अर्थात् मानसिक ऊर्जा में संतुलन बनाने का प्रयास करते हैं। 'हं' मंत्र है प्राण शक्ति का और 'ठं' मंत्र है चित्त

शक्ति का। इस प्रकार हठयोग में शारीरिक ऊर्जा और मानसिक ऊर्जा को व्यवस्थित करने का एक प्रयास होता है।

हठयोग के अंतर्गत मुख्य रूप से पाँच प्रकार के अभ्यास आते हैं। इन पाँच अभ्यासों में जो अधिक प्रचलित हैं, वे हैं आसन एवं प्राणायाम, तथा जो कम प्रचलित हैं, वे हैं मुद्रा, बन्ध और षट्कर्म। लेकिन कम प्रचलित होने का यह मतलब नहीं कि इनकी आवश्यकता नहीं, बल्कि यह कि आप लोगों को कोई सिखाता नहीं है। आज किसी योग शिक्षक से पूछो कि योग क्या है, तुम क्या करते हो, तो बोलेगा, मैं तो आसन-प्राणायाम करता हूँ, यही योग है। अगर कोई शिक्षक केवल क-ख-ग लिखना-पढ़ना सिखाये और कहे कि यही शिक्षा है तो क्या उसको आप सही मानोगे? नहीं, वह तो प्रारम्भिक शिक्षा है। इसी तरह केवल आसन-प्राणायाम योग नहीं है, बल्कि योग का एक अंग है।

शारीरिक स्वास्थ्य

शरीर के माध्यम से ही आप अपने सभी कर्त्तव्यों का पालन कर सकते हो। अगर बीमार पड़ जाओगे तो फिर दफ्तर जा पाओगे क्या? फिर और कोई काम हो पायेगा क्या? अपने शरीर को स्वस्थ रखना और रोग के दु:ख से अपने आपको मुक्त करना, ये हठयोग के काम हैं। हम पिछले पचास साल से योग सिखा रहे हैं और इस अवधि में हमलोगों ने चिकित्सा के क्षेत्र में अनेकों प्रकार के अनुसंधान किये और यह देखने का प्रयास किया कि जब हम योग के अभ्यास करते हैं तो उनसे हमारे शरीर के भीतर, हमारी ग्रंथियों में, हमारे अंगों में क्या परिवर्तन होता है, क्या सुधार होता है, जिसके कारण हम एक रोग से मुक्ति पाते हैं। सत्तर के दशक में बम्बई के के.ई.एम. अस्पताल में हमलोगों ने उच्च रक्तचाप पर शोध किया था। जिस उच्च रक्तचाप को संभालने के लिये आप रोज एक टेबलेट खाते हो, उससे आप पन्द्रह दिन में मुक्ति पा सकते हो केवल एक शिथिलीकरण के आसन को करने से, जिसका नाम है शवासन। उड़ीसा में बुरला मेडिकल कॉलेज के साथ हमलोगों ने मधुमेह पर शोध किया। इसमें पाया गया कि मधुमेह का उपचार चालीस दिन के भीतर सम्भव है। चालीस दिन के बाद मरीजों की विदाई होती थी चावल, आलू और मिठाई खिलाकर!

एलर्जी, दमा, हृदय रोग, त्वचा समस्याओं और पाचन तंत्र सम्बन्धी प्राय: सभी रोगों पर शोध हुआ है। यहाँ तक कि ऑस्ट्रेलिया में कैंसर पर भी शोध हुआ। डॉक्टरों ने जिन कैंसर मरीजों को छ: महीने का समय दिया था कि इसके बाद तुम लोग जीवित नहीं रहोगे, वे मरीज आज भी जीवित हैं, और जो डॉक्टर उनकी चिकित्सा कर रहे थे, वे लोग ऊपर चले गये हैं! एड्स और एच.आई.वी. पर इंग्लैंड में प्रयोग हुए हैं और सकारात्मक परिणाम देखने को मिले हैं।

पूरी दुनिया में इस प्रकार के जो अनुसंधान हुये हैं पिछले तीस-चालीस वर्षों में, उनसे यह बात तो निश्चित रूप से सिद्ध हुई है कि अगर तुम अपनी दिनचर्या में योग की कुछ विधियों को जोड़ सकते हो तो शारीरिक रोगों से तो निश्चित रूप से मुक्ति मिल जायेगी। आज शारीरिक बीमारियों का मुख्य कारण होता है अनियमित जीवनशैली। सबेरे देरी से उठना, रात को देरी से सोना, दिन में जब भूख लगे तब खाना, कोई परहेज नहीं, कोई नियम नहीं, कोई अनुशासन नहीं, जब इच्छा हो कोल्ड-ड्रिंक पी लो, जब इच्छा हो फ्रिज खोलकर मुँह में कुछ डाल लो—यह जो अनियमित और अव्यवस्थित जीवनशैली हमलोगों की हो रही है वह एक बहुत बड़ा कारण है शारीरिक रोगों के पीछे।

भोग पर संयम

किसी आदत के लग जाने पर, चाहे वह आहार सम्बंधी हो या निद्रा सम्बंधी या कुछ और, उस आदत को परिवर्तित करने में परिश्रम करना पड़ता है। अब कुत्ते की पूंछ टेढ़ी है, एक पाईप में उसको घुसा दो, दस साल छोड़ दो। जब तक कुत्ते का दुम पाईप में है, सीधा है, लेकिन जिस दिन तुम पाईप निकालोगे, पूंछ फिर टेढ़ी हो जायेगी, क्योंकि पूंछ का स्वभाव वही है। वैसे ही आदमी का स्वभाव है। जब तक आप अपने मन पर, अपने जीवन पर लगाम लगा सकते हो, तब तक ठीक हो, लेकिन जिस दिन यह लगाम छूट जायेगी या ढीली हो जायेगी, उस दिन फिर जिन्दगी भर की मेहनत पानी में बह जाने वाली है।

मधुमेह का मरीज जानता है कि उसको मिठाई नहीं खानी चाहिये, लेकिन 'माखी गुड़ में गड़ी रहे, पंख रहे लिपटाय। हाथ मले और सिर धुने लालच बुरी बलाय।' वह जानता है कि उसे मिठाई नहीं खानी है, लेकिन कहेगा थोड़ी-सी खा लेते हैं, इंजेक्शन तो लेता ही हूँ। जब स्वाद ही तुम्हारे लिये प्रमुख है तो इसका मतलब उपचार प्रमुख नहीं है।

इसलिये रोग को हम भोग की पराकाष्ठा मानते हैं। भोग की कामना है, तभी रोग की संभावना होगी। लेकिन जब इसी भोग को हम व्यवस्थित और संतुलित कर देते हैं, तब भोग रोग की बजाय योग में परिवर्तित होता है। रोग में मृत्यु निश्चित है और योग में शान्ति निश्चित है। इसके लिए संयम का होना आवश्यक है। संयम ही भोग को व्यवस्थित करने में सहायक होता है। अगर भोग में संयम नहीं तो रोग होगा और अगर भोग में संयम हो जाय तो योग।

शरीर के विभिन्न कोष

हठयोग में जिन आसनों, प्राणायामों, मुद्राओं, बन्धों और षट्क्रियाओं की चर्चा होती है, ये पूरे शरीर की सफाई करते हैं और शरीर के विषाक्त तत्त्वों को दूर करते

हैं। हमारे शरीर में तीन प्रकार के विषाक्त तत्त्व या दोष होते हैं—वात, पित्त और कफ। इन तीनों में असंतुलन हो जाए तो उसका बहुत बुरा परिणाम हमें भुगतना पड़ता है। ये जो तीन दोष माने गये हैं आयुर्वेद में, इन्हीं को हठयोग के विभिन्न अभ्यासों द्वारा व्यवस्थित किया जाता है।

वास्तव में योगी लोग इस शरीर को दूसरे तरीके से देखते हैं। योगी कहते हैं कि हाड, माँस, मज्जा से बने इस स्थूल शरीर के भीतर चार और शरीर हैं। आप लोगों ने बचपन में कभी रशियन गुड़िया देखी होगी। उसको खोलो तो उसके भीतर एक और गुड़िया होती है। उसको निकालो और खोलो तो उसके भीतर तीसरी गुड़िया होती है। उसको निकालो, खोलो तो चौथी गुड़िया। फिर पाँचवी गुड़िया। ठीक उसी प्रकार से हमारे शरीर के भीतर चार और शरीर हैं। पदार्थमय शरीर को हमलोग कहते हैं अन्नमय कोष, क्योंकि इसका निर्माण अन्न से होता है। इससे सूक्ष्म है प्राणमय शरीर अर्थात् ऊर्जा। इससे सूक्ष्म है मनोमय शरीर, मन। इससे सूक्ष्म है विज्ञानमय शरीर, चेतना और इससे सूक्ष्म है आनन्दमय शरीर या आत्मा की अनुभूति।

शरीर, प्राण, मन, चेतना और आत्मा—ये हमारे पाँच कोष हैं। दूध में घी, मक्खन, और दही छिपा है, लेकिन दिखलाई तो नहीं देता। कैसे निकालते हो? मंथन के द्वारा। जब मंथन करोगे दूध में, तब उसमें जो तत्त्व छिपा है वह प्रकट होगा। उसी प्रकार इस शरीर के भीतर ये चार तत्त्व छिपे हुये हैं। प्राण का अनुभव होता है ऊर्जा के रूप में। आपके शरीर में जो गर्माहट है, वह प्राण है। जब कहते हैं न कि हमारे हाथ-पैर ठण्ढे हो रहे हैं और लोग उसको रगड़ते हैं, मालिश करते हैं, इसका मतलब कि प्राण की, ऊर्जा की कमी हो रही है। मन का अनुभव होता है विचारों और इच्छाओं के रूप में। इसी प्रकार से चेतना और आत्मा भी एक अनुभूति है, जिसे उपनिषदों में समझाया गया है।

हठयोग अन्नमय और प्राणमय कोष के लिये है, क्योंकि इससे शारीरिक स्वास्थ्य और ऊर्जाओं में संतुलन की प्राप्ति होती है। सूर्य स्वर और चन्द्र स्वर, प्राण शक्ति और चित्त शक्ति, दोनों में संतुलन आता है। इसके बाद है राजयोग जिसका सम्बन्ध है मनोमय और विज्ञानमय कोष से, और अन्त में क्रियायोग है, जो आत्मिक अनुभव प्रदान करता है, आत्मा के क्षेत्र में प्रवेश दिलाता है। इस प्रकार हमलोगों की आध्यात्मिक यात्रा क्रमशः शरीर, मन और आत्मा की ओर होती है और यही है योग का साधनात्मक क्रम।

—9 अक्टूबर 2015, गुवाहाटी

कर्मयोग का अभ्यास

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

कर्म ही पूजा है। कर्म ईश्वर की उपासना है। यह भूलना नहीं चाहिये कि कर्म ध्यान है। कर्म और ध्यान के समन्वय द्वारा आध्यात्मिक विकास करना चाहिये। मेहतर का काम भी यदि सही रीति से किया जाये तो योग है। *वसुधैव कुटुम्बकम्*—सारे विश्व को ही अपना घर समझो, अपना बड़ा परिवार समझो। आँख बन्द करके बैठने की आवश्यकता नहीं।

साक्षी-भाव, अकर्तृत्व भाव अथवा निष्कामभाव से किया हुआ कर्म वास्तव में कर्म नहीं है। वह ज्ञानरूपी अग्नि से भस्म हो जाता है। वह बंधनकारक नहीं है।

नि:स्वार्थ कर्म और मानव सेवा बीज है। नारायण भाव अर्थात् सेवा के समय यह भाव रखना कि सभी प्राणी नारायण के ही प्रतिरूप हैं और मैं इन प्राणियों में उस प्रभु की सेवा कर रहा हूँ, जड़ है। उत्साह वृष्टि है और फूल है हृदय की विशालता। चित्त-शुद्धि फल है। यह है कर्मयोग का मार्ग।

भगवान सबके स्रष्टा, संस्थापक और आधार हैं। उच्च या निम्न, सभी प्राणियों में उनका निवास है। मनुष्य का हृदय ही भगवान का भव्य मंदिर है। धनी लोग नाम और यश अर्जन करने के लिये मंदिर बनवाते हैं और उस पर अपने नाम की शिला लगवाते हैं। क्या यह मूर्खता नहीं है?

नि:स्वार्थ भाव से अथक सेवा करना और दूसरों से किसी मान-सम्मान की अपेक्षा भी न रखना—यही योग है और यही धर्म है। अपने क्षुद्र अहंकार को भूल जाओ। अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को भूल जाओ। दूसरों के लिये काम करो। सारी संकीर्णताएँ छोड़ दो। उदात्त और उदार बनो। । तभी अपनी आत्म-प्रकृति को धीरे-धीरे समझने लगोगे।

जो अपने को भूल कर, अपनी सुख-सुविधाओं की चिन्ता न करते हुये दूसरों की सेवा-शुश्रूषा करता है, वह आध्यात्मिक साधना में प्रगतिशील साधक है। नि:स्वार्थी और शरीर के प्रति अनासक्त मनुष्य ही मानवता की सच्ची सेवा कर सकता है। उसी में वास्तविक शक्ति होगी और वही निर्भय होगा। जो विश्व की सेवा करना चाहते हैं, उनमें भरपूर सत्त्व गुण अर्थात् शुद्धि होनी चाहिये। तभी वे सांसारिक भोगों के संपर्क में आकर भी उनके प्रभाव से बचे रह सकेंगे और लोगों की भी उन्नति कर सकेंगे।

घृणा, द्वेष तथा सत्ता, पद और सम्पत्ति की आकांक्षा छोड़ दो। नम्रता का मुकुट पहनो। शुद्ध और तेजस्वी बनो। भगवान में श्रद्धा रखो। जप और ध्यान में स्थिर रहो। प्रेम और प्रकाश प्राप्त करो। सदा फुर्तीला रहने की आदत डालो। दूसरों की भलाई के लिये भरसक त्याग करो। स्वार्थ को सर्वदा त्याग दो। सेवा या दान के

प्रतिफल की कुछ भी अपेक्षा मत रखो। दूसरों को धन्यवाद दो कि उन्होंने आपको सेवा का अवसर दिया।

जो समाज की सेवा करते हैं, वे वस्तुत: अपनी ही सेवा करते हैं। दूसरों की सहायता करनेवाला वास्तव में अपनी ही सहायता करता है। इसलिये जब भी दूसरों की या देश की सेवा करो, तब यही समझो कि भगवान ने सेवा के द्वारा आपको सुधरने, प्रगति करने तथा नव-निर्माण का अवसर दिया है।

दूसरों की सहायता और सेवा का कोई भी अवसर हाथ से जाने न दो। स्वेच्छा एवं प्रसन्नमुद्रा से सेवा करो। उदास मुखमुद्रा न दिखाओ। एकाग्रता और निष्ठा के साथ प्रत्येक कार्य को सुचारु रूप से सम्पादित करो। यथासंभव दूसरों की सेवा करने में अपने जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग करो।

काम में लीन रहो। पूरे हृदय, मन और आत्मा से काम में लगो। फल की चिन्ता न करो। जय-पराजय के विषय में न सोचो। भूतकाल का विचार न करो। पूर्ण विश्वास रखो। आत्मसंयमका अभ्यास करो। सर्वदा प्रसन्न रहो। मन को शांत और संतुलित रखो। काम के लिये काम करो। धीर और उत्साही रहो। आपको अपने प्रत्येक अध्यवसाय में निश्चित सफलता मिलेगी। सफलता का यही रहस्य है।

सेवा करते समय ध्यान रहे कि भगवान के लिये काम कर रहे हो। प्रत्येक कर्म को ईश्वरार्पण करो। इससे शीघ्र आध्यात्मिक विकास होगा। अपने मनोभावों की सदा छानबीन करते रहो।

जब आप किसी रोगी के शरीर में मलहम लगाओ तो समझो कि विराट् पुरुष का शरीर स्पर्श कर रहे हो। इससे त्वरित विकास होगा। हृदय विशाल होगा। घृणा की भावना समाप्त हो जायेगी। प्रेम बढ़ेगा। शुद्ध भाव क्षीण होने पर उसे तुरन्त पूर्ण करो। कुछ महीनों तक दृढ़तापूर्वक अभ्यास करोगे तो आपमें शुद्ध भाव स्थिर हो जायेगा। सदा प्रयत्नशील रहो।

आप किसी मनुष्य का पैर दबाओगे तो वह प्रसन्न होगा। शरीर का कोई अंग छूने से पूरा मनुष्य प्रसन्न होता है। इसी तरह कोई एक मनुष्य प्रसन्न हो तो समूचा विराट् पुरुष प्रसन्न होगा, क्योंकि मनुष्य उस विराट् का अंग है।

कर्म के साथ भाव अवश्य रखना चाहिये। सर्वत्र हरि-दर्शन और सभी कर्मों को ईश्वरार्पण करने का अभ्यास आवश्यक है। आपके दो हाथ भगवान ही के हाथ हैं। वे आपके द्वारा काम करते हैं, देखते हैं, सुनते हैं, जानते हैं और खाते हैं। इसका भान करो। सर्वदा अनुभव करो।

किसी एक विषय पर मन की एकाग्रता बनाये रखो। उद्देश्यसिद्धि के प्रति सजग और सुदृढ़ रहो। मन को चारों ओर भटकने न दो। मन को शांत रखो। शांत और प्रसन्न मन से सारा काम करो। ईश्वरार्पण-बुद्धि से समझपूर्वक काम करो। तब प्रत्येक काम यौगिक कर्म बन जायेगा। तब सभी काम सफल होंगे।

अपनी आय का कुछ भाग दान के लिये सुरक्षित रखो। कभी-कभी दान कर दें या सेवा कर दें तो वह कर्मयोग नहीं होगा। आपको नियमित रूप से सेवा करनी चाहिये, अपने को भूल जाना चाहिये। तब वह योग होगा।

सबके साथ सौहार्द से मिलो। सबको गले लगाओ। सबसे प्रेम करो। सबकी सेवा करो। नि:स्वार्थ सेवा और सुसंगति का अभ्यास करो। अथक सेवा द्वारा सबके हृदय में प्रवेश करो। यही अद्वैतानुभूति है, एकत्व का साक्षात्कार है।

मानवता की सेवा केवल यान्त्रिक क्रिया नहीं होनी चाहिये, आत्म-भाव के साथ होनी चाहिये। सेवा ही चित्त-शुद्धि और तत्परिणामस्वरूप ज्योति के आविर्भाव के लिये योग है। प्रत्येक कर्मयोगी को इस भाव को अपने अन्त:करण में ठूँस-ठूँस कर भर लेना चाहिये। दूसरे के विषय में अधिकाधिक सहानुभूति प्रकट होने का अर्थ है, हृदय विशाल और अध्यात्म का विकास हो रहा है।

किसी मित्र की सेवा करने की इच्छा होने पर यह पूछना कि आपको चाय दूँ या दूध, केवल मौखिक सेवा है। बिना पूछे ही एक कप चाय उनके सामने नम्रतापूर्वक खुशी-खुशी रखो, यह सच्ची सेवा होगी। आपकी शिष्टता सदा समान, भरपूर और सहज होनी चाहिये। कुछ लोग बहुत चतुर होते हैं। वे मित्र से कहेंगे, 'मैं जानता हूँ कि आप खाना तो खायेंगे नहीं, फिर इस समय चाय लेंगे या दूध?' मित्र को कहना पड़ता है, 'नहीं, नहीं, अभी-अभी चाय पीकर आ रहा हूँ।' वे कहेंगे, 'कम-से-कम सुपारी या इलायची तो लीजिये।' प्रारंभ से ही वे नहीं चाहते कि उस मित्र को दूध, चाय कुछ दें। सेवा करने की भावना केवल ओठों पर ही रह गयी। इस दुनिया में ऐसे लोग बहुत हैं। वास्तव में ये धरती के बोझ हैं।

नया साधक अनुभव करेगा, 'मेरे गुरुजी तो मुझसे नौकर की तरह व्यवहार कर रहे हैं। मुझसे तुच्छ काम ले रहे हैं।' जिसने कर्मयोग का रहस्य जान लिया है, उसकी दृष्टि में सभी काम समान महत्व के हैं। सभी काम यौगिक कर्म या भगवदाराधना हैं। कोई भी काम तुच्छ नहीं है, सभी ईश्वर की पूजा है। कर्मयोग में सभी काम पवित्र हैं। साधारण लोगों की दृष्टि में जो काम तुच्छ है, उन्हें जो साधक सहर्ष और स्वेच्छा से सदा सम्पादन करता है, वह सचमुच बड़ा प्रभावशाली योगी बन जाता

है। उसमें अहंकार का उच्च भाव पूर्णत: समाप्त हो जायेगा। उसका कभी अध:पतन नहीं होगा। गर्व का लवलेश भी उसे स्पर्श नहीं करेगा।

एक सच्चे योगी की दृष्टि में तुच्छ काम या श्रेष्ठ काम में कोई भेद नहीं है। उनमें भेदभाव रखना निरा अज्ञान है। कुछ साधक प्रारंभ में बड़े विनम्र रहते हैं, परन्तु जब उनका कुछ नाम और यश हो जाता है, उनके कुछ अनुयायी, कुछ प्रशंसक, कुछ शिष्य और भक्त बन जाते हैं, तब वे गर्व के शिकार हो जाते हैं। वे कुछ भी सेवा नहीं कर सकते हैं। अपने हाथों से या अपने सिर पर वे कुछ भी नहीं ले जा सकते हैं। वह योगी वास्तव में स्तुत्य है जो कि रेलवे स्टेशन पर खुद अपना सामान हाथ में या सिर पर लेकर अपने भक्तों, शिष्यों और प्रशंसकों के बीच किसी विनम्रता का बाह्य प्रदर्शन किये बिना नि:संकोच भाव से चलता है। योगी जड़भरत ने चूँ तक किये बिना राजा की पालकी अपने कंधों पर ढोयी। भगवान श्रीकृष्ण ने अपने भक्त नाई की अनुपस्थिति में उसके स्वामी के पैर दबाये। श्रीरामचन्द्र ने अपने सेवक के स्नान के लिये स्वयं पानी ला दिया। श्रीकृष्ण ने दामा जी का धन नवाब को चुकाने के लिये एक साधारण सेवक विठु का रूप धारण किया।

यदि आप आध्यात्मिक उन्नति करना चाहते हो तो जीवनपर्यन्त प्रतिदिन सभी प्रकार की सेवायें करने को तैयार रहो। इसमें ही आपकी कुशलता है। प्रसिद्ध योगी बनने के बाद भी सेवा बंद मत करो। आपके शरीर की नस-नस एवं रग-रग में सेवा-भाव समा जाना चाहिये। तब आप सच्चे कर्मयोगी और व्यावहारिक वेदान्ती बन जाओगे।

महात्मा गाँधी की आत्मकथा पढ़िये। उन्होंने कभी छोटे-बड़े काम का भेद नहीं किया। उनके लिये शौचालय की सफाई का काम महान् योग था। उनकी दृष्टि में यह महापूजा थी। उन्होंने स्वयं शौचालय साफ किये। विभिन्न सेवाओं के द्वारा उन्होंने अपने क्षुद्र अहं को समाप्त कर दिया था। गाँधी जी अपने जूतों की मरम्मत स्वयं करते थे। आश्रम में वे प्रतिदिन आटा स्वयं पीसते और जब कभी कोई अपनी पारी में जितना आटा पीसना चाहिये, उतना नहीं पीस पाता था तो उसका भी भाग स्वयं पीस देते थे। आश्रम में कोई नवागन्तुक चक्की चलाने में शरमाता तो गाँधी जी स्वयं उसके सामने चक्की चलाते और फिर वह भी स्वेच्छा से चलाने लगता।

भगवान की सेवा करने वाले सभी समान हैं। उनको जाति, पंथ, रंग आदि भेद छोड़कर एक साथ बैठकर खाना चाहिये। आध्यात्मिक विकास और भगवद्भक्ति में प्रगति करने के लिये ऊँच-नीच भाव भूल जाना चाहिये। सारे भेदों को हटाकर सर्वत्र एक ईश्वर का ही दर्शन करना चाहिये। सबके साथ एकरूप होना चाहिये। सबमें घुल-मिल जाना चाहिये। सहिष्णु बनना चाहिये। सामंजस्य, शुद्ध प्रेम, क्षमा और समदृष्टि अपनानी चाहिये।

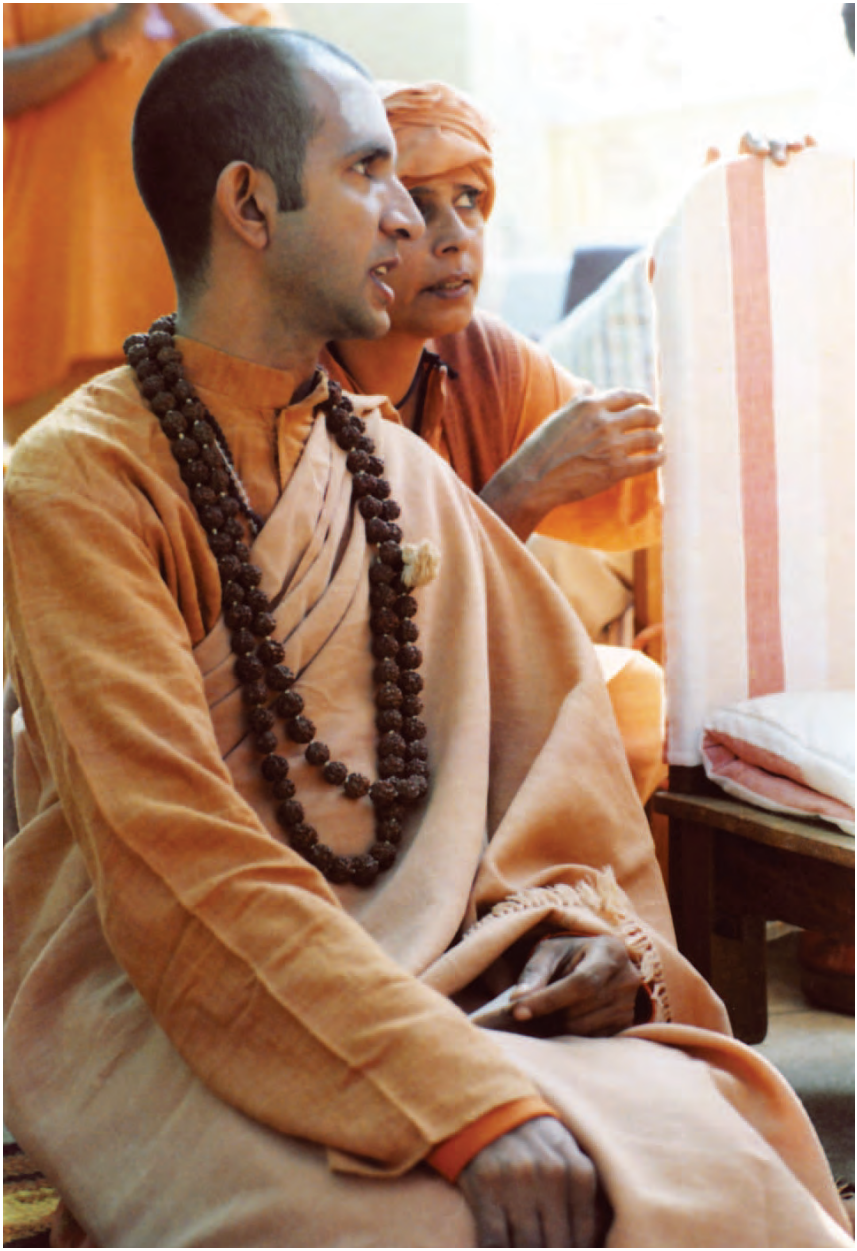

सर्वप्रकारेण अपने आदर्शों एवं सिद्धांतों पर दृढ़ रहिये। सारा संसार आपका विरोध करे तो भी डटे रहिये। उत्तम ध्येय के लिये प्राण तक अर्पण करने को तत्पर रहिये। सबकुछ ईश्वरार्पण कीजिये। अपना अहंकार भी भगवान के चरणों में अर्पित कर निश्चिन्त बन जाइये। वे आपका पूरा भार ले लेंगे। उनकी ही इच्छा चलने दीजिये। वे सारी दुर्बलताओं और क्षतियों को दूर कर देंगे। वे इस शरीर रूपी मुरली में सुन्दर संगीत बजायेंगे। उनकी सुमधुर, रहस्यमयी आत्मिक मुरली की ध्वनि का आनंदानुभव कीजिये।

सच्ची नि:स्वार्थ सेवा करना बहुत कठिन है। कुछ लोग सच्चे नि:स्वार्थ सेवी के वेश में मंच पर आ खड़े होते हैं। लेकिन वे अपनी ही सेवा करते हैं। कुछ संन्यासियों की भी यही स्थिति है। क्या यह अत्यन्त खेद का विषय नहीं?

कर्तापन, भोक्तापन और स्वामीपन आदि भावनाओं को छोड़ दीजिये और मनुष्य-मनुष्य में अंतर को, 'मैं', 'तू', 'वह' आदि भेदों को भूल जाइये। इससे शीघ्र ज्ञान-प्राप्ति होगी। अविवेक के कारण ही कामनाओं का उद्‌भव होता है। विवेकोदय के साथ कामनाओं का नाश हो जायेगा। सत्य और मिथ्या का विवेक करना सीखिये। मोक्ष या परमानंद के राज्य में आपका प्रवास शीघ्र सधे!

प्रत्येक कार्य अनासक्त भाव से करना चाहिये। कार्य करते समय यह भाव भी नहीं होना चाहिये कि आत्म-शुद्धि के लिये कर्म किया जा रहा है। केवल भगवान के लिये ही कर्म कीजिये। भगवान प्रसन्न हों, यह विचार भी न रखिये। काम चाहे जितना भी आकर्षक और रुचिकर हो उसे किसी भी समय छोड़ने के लिये सदा उद्यत रहना चाहिये। अन्तरात्मा के आदेश पर उस काम को तुरंत छोड़ देना चाहिये। काम की आसक्ति बन्धन का कारण है। कर्म के सूक्ष्म रहस्यों को भलीभाँति जान लीजिये और साहसपूर्वक आगे बढ़िये।

आत्म-विश्वास रखिये। भ्रमात्मक विचार न कीजिये। अंधविश्वासी न बनिये। किसी का दास न बनिये। अपनी स्वतंत्रता को न बेचिये। आप अमर आत्मा हैं। हीन भाव मिटाइये। अंदर से शक्ति, धैर्य और तेज को ग्रहण कीजिये। मुक्त रहिये। अंधश्रद्धा न रखिये, बुद्धि से परख लीजिये और फिर किसी चीज को अपनाइये। भावनाओं के उद्रेक में आँख मूँदकर बह न जाइये।

आवेगों का दमन कीजिये। विशाल बनिये। आपके अन्दर ही महान् शक्ति और ज्ञान का भण्डार है, उसे प्रकाशित करने की आवश्यकता है। फिर सम्पूर्ण रहस्य आप पर प्रकट हो जायेगा। आत्म-ज्ञान के प्रकाश से अज्ञानान्धकार नष्ट हो जायेगा। यहाँ कर्मयोग और वेदान्त का सार कुछ शब्दों में ही दे दिया है। अमृत-पान कीजिये और अमरता, परम शांति तथा अनन्त सुख पाइये। यही जीवन का ध्येय है। इस संसार में आने का यही लक्ष्य है और इसमें ही जीवन की सार्थकता है। इस उन्नत ध्येय की प्राप्ति में कर्मयोग और उपासना दोनों सहायक हैं।

वैराग्य और निष्काम कर्म

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

वैराग्य और निष्काम कर्म, दोनों एक ही हैं या इनमें अन्तर है? अगर अन्तर है, तो क्या है?

फर्क तो है। वैराग्य का कर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। वैराग्य का मतलब कुछ और होता है। जिन विषयों को तुमने देखा और सुना है, जो तुम्हारे मन में बार-बार आते हैं, उनसे तुम्हें डर लगता है या तृष्णा होती है? तुमने किसी चीज का भोग किया हो, अच्छा खाना खाया हो, अच्छा कपड़ा पहना हो, उसकी याद बार-बार मन में आती है या नहीं? उन चीजों की तृष्णा होती है या नहीं? उसको कहते हैं राग। राग का अर्थ होता है मन में एक बाध्यता या सनक। मन में वही चीज बराबर घूमती रहती है, उसको कहते हैं राग। और जिसने तुमसे बुराई की हो, जिसने तुमको कष्ट दिया हो, उसकी याद आती है या नहीं? आती है। उसको कहते हैं द्वेष। द्वेष का मतलब होता है, नफरत। जो नहीं चाहते हो, वह द्वेष है।

राग और द्वेष, दोनों मन के ही धर्म हैं, एक ही भावना के दो पहलू हैं। हमारे पास एक मन है, उसके एक पहलू को हम पसन्द करते हैं, दूसरे को नापसंद। हमारे पास कोई दो मन थोड़े ही हैं। मन की वही वृत्ति है, एक से राग करती है, दूसरे से द्वेष। देखे गये, सुने गये विषयों की जो तृष्णा मन में है, उसको नियन्त्रित करना ही

वैराग्य है– *दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्*। वैराग्य का मतलब कोई सम्प्रदाय नहीं होता है। हाँ, एक सम्प्रदाय भी है, जिसको कहते हैं वैरागी। वे लोग सफेद कपड़े पहनते हैं, दाढ़ी बढ़ाते हैं, तिलक लगाते हैं, कण्ठी पहनते हैं, खाने-पीने के उनके कुछ नियम होते हैं। उसे सम्प्रदाय कहते हैं। हम सम्प्रदाय की बात नहीं कर रहे हैं, हम तो वैराग्य शब्द की बात कर रहे हैं। वैराग्य का मतलब है राग और द्वेष, दोनों का नहीं होना।

राग और द्वेष, दोनों की उत्पत्ति कहाँ से होती है? काम और क्रोध से। काम माने चाहना और क्रोध का मतलब गुस्सा होना, निराश होना। जो चीज तुम चाहते थे, अगर वह तुमको मिल गयी, तो गुस्सा क्यों? मान लो, तुम घर चाहते थे, तुमको घर मिल गया, तो तुमको खुशी होगी, गुस्सा थोड़े ही होगा। तुमको बेटा चाहिए था, बेटा मिल गया तो तुम गुस्सा करोगे क्या? और बेटा न होकर बेटी हो गयी तो कहोगे, 'अरे, यह क्या बेटी हो गयी।' काम की पूर्ति न होने पर क्रोध होता है। काम से उत्पत्ति होती है क्रोध की और क्रोध से उत्पत्ति होती है द्वेष की। गीता में कहा गया है, इन दोनों की उत्पत्ति रजोगुण से हुई है।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥3.37॥

महाशनः का मतलब बहुत खाने वाला, अग्नि के समान भोगों से न तृप्त होने वाला। काम ऐसा प्राणी है जो खाते जाता है। इच्छाओं को कितना भी पूरा करते जाओ, फिर भी भूख लगती रहती है। और क्रोध भी कभी खत्म नहीं होता, क्योंकि निराशा तो जिन्दगी भर लगी हुई है। कोई आदमी दुनिया में ऐसा नहीं है जिसको निराशा नहीं हुई हो। कोई ऐसा आदमी नहीं, जिसकी सब इच्छायें पूरी होती हों। कोई है क्या? काम और क्रोध, दोनों बहुत खाते रहते हैं, बहुत पेटू हैं, क्योंकि इच्छाओं की कितनी भी पूर्ति करते जाओ, पूरी होती नहीं, भूख कभी मिटती नहीं और क्रोध भी कभी खत्म नहीं होता। निराशा तो जिन्दगीभर लगी रहती है। इसलिए गीता में कहा है, इन्द्रियों को वश में करके इन विषयों को मारो–

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥3.41॥

तुम जो भी काम करते हो, उसके पीछे इच्छा रहती है। पुत्र, नौकरी और खेती के पीछे इच्छा है। रात को सोते हो, सबेरे जागते हो, खाना बनाते हो, उसके पीछे भी इच्छा है। कोई भी काम करो, उसके पीछे इच्छा है। और वह इच्छा अपने लिए है। बेटा क्यों चाहिए? अपने लिए। घर क्यों चाहिए? अपने लिए, सब अपने लिए। समझ गये न? सब कामना आदमी अपने लिए करता है। जो कामना दूसरे के लिए

की जाती है, वह कामना नहीं है। जो चीज तुम दूसरे के लिए चाहते हो, वह कामना नहीं होती। जो चीज तुम अपने लिए चाहते हो, जिस इच्छा का सम्बन्ध अपने से है, उसको कामना कहते हैं। और जब तुम्हारी इच्छा का केन्द्र तुम न होकर कोई और हो, तब वह निष्काम हुआ। उपनिषद् कहता है–

न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्रा: प्रिया भवन्ति आत्मनस्तु कामाय पुत्रा: प्रिया भवन्ति।
न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवति आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति।

पुत्र को तुम प्रेम करते हो, इसलिए नहीं कि वह तुम्हारा पुत्र है; पत्नी को तुम प्रेम करते हो, इसलिए नहीं कि वह तुम्हारी पत्नी है; तुम उन्हें अपने लिए प्यार करते हो। ऐसा शास्त्र में लिखा हुआ है। इसका मतलब जो भी सम्बन्ध दुनिया में है, उसका केन्द्र 'मैं' हूँ। जिसमें 'तुम' केन्द्र हो जाता है, उसको कहते हैं त्याग। अभी 'मैं' केन्द्र हूँ सबका, जो कुछ हो रहा है, मेरे लिए हो रहा है। और जब दूसरे के लिए होने लगता है, तब उसको कहते हैं निष्काम। निष्काम ही परमार्थ है और परमार्थ में इच्छा नहीं, संकल्प होता है। जब तुम दूसरे की भलाई और सेवा की बात सोचते हो, वह इच्छा नहीं, संकल्प है। कामना और संकल्प में इतना ही फर्क होता है। इसलिए हम हमेशा कहते हैं, हमारा संकल्प है, हमारी इच्छा नहीं।

ध्यान देने की एक और बात है। दुनिया में कितने ही लोग सेवा भी करते हैं, उसके पीछे कारण कुछ और होता है। अपना स्वार्थ होता है, चाहे छोटा हो या बड़ा। मैं दूसरों की सेवा क्यों करता हूँ? ताकि भगवान तक पहुँच जाऊँ। मैं दूसरों की सेवा इसलिए करता हूँ कि मेरा नाम हो, मेरी तारीफ हो, यह भी स्वार्थ की श्रेणी में आता है। ऐसी सेवा बहुत कठिन है, जिसमें तुमको कोई फल मिले या नहीं, उससे तुम्हें फर्क न पड़े। गधे को खिलाया, न पाप न पुण्य। जिस सेवा को करने से तुम्हें कुछ नहीं मिलता, न नाम, न धन, न यश, न दु:ख, न शान्ति, उसको कहते हैं निष्काम।

जब मदर टेरेसा 40-50 साल पहले कलकत्ता में आयीं, तो क्या करती थीं? सड़क से मरते हुए लोगों को ले आती थीं। लोग उसका मजाक उड़ाते थे। वे सोचते थे, इसका दिमाग ठीक नहीं है, वह तो मरने ही वाला है, उसे ले जाने की क्या जरूरत है। और वह मर भी जाता था। वे कचरे से, सड़क से उठा कर ले जाती थीं। वे ऐसा क्यों करती थीं?

ईश्वर को खोजने के कई तरीके होते हैं। जैसे कलकत्ता जाने के लिए एक रास्ता बम्बई से, दूसरा मद्रास से, तीसरा कहीं और से है, वैसे ही भगवान के पास पहुँचने के लिए हर आदमी के लिए अलग रास्ता है। तुम जहाँ हो, वहीं से चलो। तुमको अगर देवघर से कलकत्ता जाना हो, तो बम्बई जाने की जरूरत नहीं है, सीधे जा सकते हो।

जब तुम्हारे पुत्र, पत्नी या इष्ट मित्र को तकलीफ होती है, तो तुम्हें तकलीफ होती है न, मगर जब किसी अपरिचित को तकलीफ होती है, तब तुम्हें तकलीफ

नहीं होती। वेदान्त में इसके लिए द्वैत शब्द का प्रयोग किया गया है। तुम्हारी आत्मा अपनी स्त्री, बेटे, भाई, भाभी इत्यादि से जुड़ी हुई है, इसलिए उनकी तकलीफ से तुम्हें तकलीफ होती है। किन्तु जब तक तुम्हारी आत्मा दूसरों से भी इसी प्रकार नहीं जुड़ेगी, तब तक तुम्हारा हृदय शुद्ध नहीं होगा। और जब तक हृदय शुद्ध नहीं होगा, तब तक भगवान की छाया भी नहीं दिखेगी।

जो मुखड़ा देखन चहिए तो दरपन मांजत रहिये।
जो दरपन लागे काई तो मुखड़ा लखा न जाई॥

अगर चेहरा देखना हो, कहाँ देखोगे? आईने में देखोगे कि नहीं! और अगर आईना गन्दा रहा तो क्या करोगे उसको? साफ करोगे। जिस तरह आईना साफ नहीं हो तो चेहरा नहीं दिखेगा, उसी तरह भगवान का हिसाब है। भगवान तो तुम ही हो, मगर तुमको अपना चेहरा नहीं दिख रहा है।

हमारे गुरुजी कहते थे कि इसके लिए आध्यात्मिक स्कूल में भर्ती हो जाओ जहाँ पहला दर्जा है 'सेवा', दूसरा दर्जा है 'प्रेम', तीसरा दर्जा 'दो-दो-दो', चौथा दर्जा 'आत्मा शुद्ध करो, दिल को साफ करो' और पाँचवाँ दर्जा 'ध्यान करो।' छठा दर्जा यूनिवर्सिटी का है–'भगवान का दर्शन करो।' तुम कुछ भी करो, गीता, रामायण, भागवत पढ़ो, पूजा-पाठ करो, पर केवल उससे कुछ नहीं होगा। केवल सब्जी काटने से काम नहीं चलता, उसमें नमक भी डालना पड़ता है। केवल सूजी से हलवा नहीं बनता, उसमें चीनी भी डालनी पड़ती है।

मदर टेरेसा ने भी यही कहा था कि भगवान की पूजा गिरजाघर में तो सभी करते हैं, मैंने अच्छे-खासे पैसे वालों को भी भगवान की पूजा करते देखा है, वे मन्दिर में बच्चों के साथ जाते हैं, घण्टी बजाते हैं, आरती करते हैं, पर असाध्य बीमारी से पीड़ित सड़क पर पड़े हुए आदमी को कोई पूछता ही नहीं। वे कहती थीं, 'मैं उसे ठीक करने के लिए नहीं लायी हूँ। असाध्य बीमारी से पीड़ित वह जो आदमी है, उसे प्रेम की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी तुमको। उसको भी प्यार चाहिए, वह भी चाहता है कि कोई उसको चाहे, प्यार दे। जैसे एक सुन्दर स्त्री पुरुष को चाहती है, माता पुत्र को चाहती है, सब चाहते हैं स्त्री उसे प्यार करे, पुरुष उसे प्यार करे, बेटा प्यार करे या माँ प्यार करे, उसी प्रकार एक सड़क पर पड़ा हुआ आदमी क्या प्यार नहीं चाहता? तो उसको कौन देगा प्यार?'

सड़क पर जितने भी अनाथ बच्चे होते थे, उनको मदर टेरेसा उठाकर ले आती थीं। सेवा का यह उत्तम तरीका है। भगवान को पाने का यह सबसे उत्तम तरीका है। दूसरों से जो निन्दित, उपेक्षित हों, उनकी सेवा करनी चाहिए। इसलिए नहीं कि वे अच्छे हो जायेंगे, आखिर मरने वाला तो मर ही जाएगा।

निष्काम शब्द बड़ा ही व्यावहारिक है और वैराग्य से श्रेष्ठ है, यद्यपि कठिन है। सारी गीता में यही बात बताई है। गीता निष्काम कर्मयोग पर ही है। संजय से पूछा, धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र में क्या हो रहा है? यह शरीर ही धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र है और कौरव-पाण्डव भी इसी के अन्दर दिखते हैं। संजय ने आखिरी श्लोक में कहा है, राजन् क्या बताऊँ, जहाँ भगवान कृष्ण हैं, जहाँ धनुर्धारी अर्जुन है, वहीं श्री है, वहीं विजय है, वहीं विभूति है–

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ 18.78॥

धनुर्धारी अर्जुन का मतलब निष्काम कर्मयोगी और योगेश्वर श्री कृष्ण का मतलब अपने अन्दर जो ऊँची आत्मा है, परमात्मा है। जो आदमी निष्काम कर्म करता है, उसका अन्तस् हमेशा साफ रहता है, उसे श्री मिलती है। श्री का मतलब सुन्दरता, सम्पत्ति, मंगल, शक्ति। विजय का मतलब जीत, तुम जो भी करोगे, जीत होगी, योग सिखाओ, बैडमिन्टन खेलो, चाहे जो करो। विभूति का मतलब होता है विशेषता। जैसे, बहुत से लोग अच्छा गाने वाले होते हैं, यह विभूति है। महात्मा गाँधी, क्या रास्ता उन्होंने निकाला अँग्रेजों को हराने का! महात्मा गाँधी के पास विभूति थी। वैज्ञानिकों के पास विभूति है। एक वैज्ञानिक ने सिंकोना निकाला। जानते हो सिंकोना कैसे बना? कहते हैं एक अंग्रेज था, उसको बुखार आया। उसे नींद आ रही थी, वह चलते-चलते एक तालाब के किनारे सो गया। जब उसकी आँख खुली, उसने उस तालाब का पानी पी लिया। जब वह सोकर उठा, तब उसका शरीर पसीने से भरा

हुआ था और बुखार उतर गया था। वह कैसे? उसने सोचा और उसे पता चला कि वहाँ सिंकोना के कई पेड़ हैं, सिंकोना के पत्ते तालाब के पानी में गिरते हैं और वह पानी कुनैन का काम करता है। यह विभूति है। विभूति का मतलब होता है, एकदम अंतर्ज्ञान हो। हमको भी हुआ, हम तो वेदान्त वाले आदमी हैं, हमने योग पर आज तक कोई किताब नहीं पढ़ी है। शंकराचार्य का भाष्य, रामानुजम् का भाष्य, सब का सब अध्ययन किया हुआ है, सब जबानी याद है। आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, यही सब अध्ययन किया है। योग तो जानते ही नहीं थे। फिर भी मैंने सोचा यही काम करेगा और काम कर गया।

–'रिखियापीठ सत्संग 2' से उद्धृत

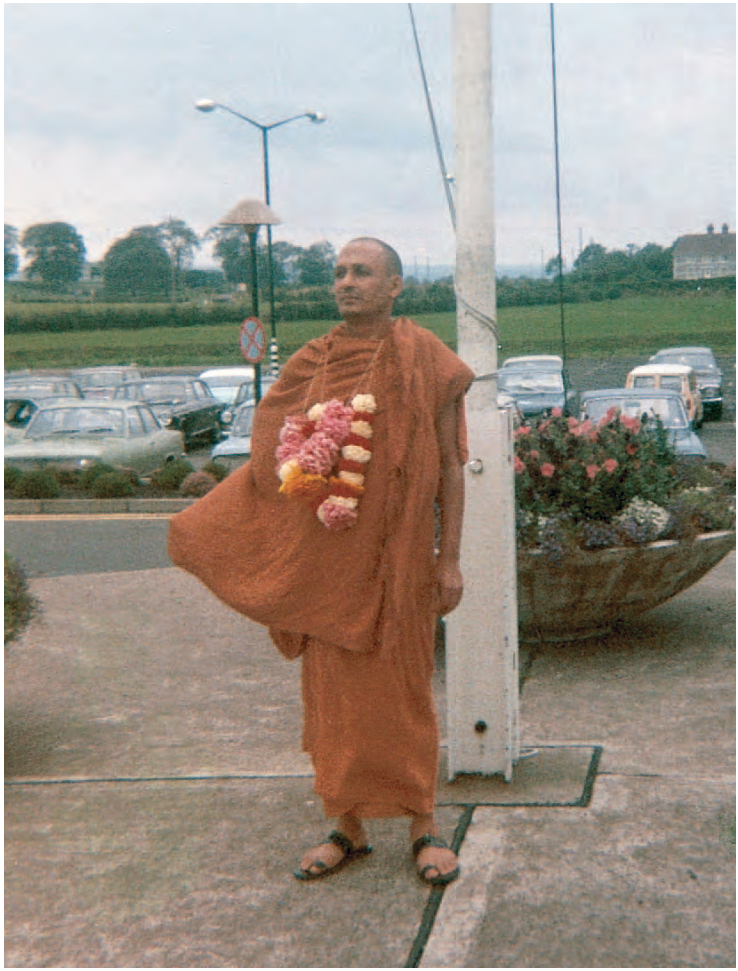

समत्वं योग उच्यते

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

कर्मयोग के व्याख्याकार अक्सर कहा करते हैं कि हमें प्रत्येक कर्म को कुशलता से करना चाहिए और उसके फल की कोई आशा नहीं रखनी चाहिए। लेकिन अगर हम जीवन की यथार्थता को देखें तो पाएँगे कि किसी में कर्म के फलों को उपेक्षित करने का सामर्थ्य नहीं।

जहाँ भी कर्म होता है वहाँ स्वाभाविक रूप से एक अच्छे परिणाम की अपेक्षा रहती ही है। हालाँकि कहा तो यही जाता है कि अपने कर्त्तव्य को करते जाओ, परिणामों की अपेक्षा मत करो, मगर वास्तव में हम सभी परिणामों की ओर नजरें टिकाये हुए हैं। कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन– 'तुम्हें सिर्फ कर्म करने का अधिकार है, उसके फलों पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं,' यह बात श्रीमद्भगवद् गीता में कही गई है। यह बात कहने का अधिकार भगवान श्री कृष्ण को हो सकता है, लेकिन तुम्हें हरगिज यह अधिकार नहीं। तुम किस आधार पर ऐसा कह सकते हो? क्या तुमने इस मान्यता को अपने जीवन में उतारा है? फल की आशा तो सभी को रहती है, एक आध्यात्मिक साधक को भी। कोई साधु भी अगर कहे कि उसे फल की कामना नहीं तो गलत बोल रहा है। कोई जप करता है तो एक अनुभूति के लिए, कोई ध्यान लगाता है तो दर्शन के लिए। तुम्हारे अपने जीवन में अनेकों अपेक्षाएँ रहती हैं, लेकिन दूसरों को अपेक्षा-रहित बनने की सीख तुम देते हो क्योंकि गीता में ऐसा लिखा है, क्योंकि गुरुओं और आचार्यों ने ऐसा कहा है! नहीं, प्रत्येक मनुष्य फल की चाह रखता है। यह एक सामान्य मानसिक अवस्था है। फिर हम किस मुँह से किसी को कहें कि फल की आशा मत करो।

फल की आशा रखने में कुछ गलत नहीं। गलत है उसके प्रति आसक्त हो जाना, सनकी हो जाना। जब हम आसक्त हो जाते हैं तब सुख और दु:ख, दोनों प्राप्त होते हैं। जब सुख मिलता है तब हम सुख के स्रोत की ओर आकर्षित होते हैं। *सुखानुशयी राग:*–हम उन अवस्थाओं, परिस्थितियों और वस्तुओं की ओर आकृष्ट होते हैं जो हमें सुख और आनन्द की अनुभूति करा सकती हैं। यही राग है। दूसरी ओर हम उन अवस्थाओं के प्रति घृणा और द्वेष करते हैं जो हमें दु:ख पहुँचाती हैं। दु:ख और कष्ट से हमें भय होता है, उन्हें हम भोगना नहीं चाहते। *दु:खानुशयी द्वेष:*–उन परिस्थितियों से हम विमुख हो जाते हैं जो दु:ख का कारण बनती हैं। इस प्रकार हमारे अन्दर जो आसक्ति होती है, वह उस फल के लिए होती है जिससे हम सुख प्राप्त कर सकें और अगर फल से दु:ख उत्पन्न होगा तो हम उससे बचने का प्रयास करते हैं।

सफलता और विफलता, दोनों को हमें स्वीकार करना है। जब कोई विफल होता है तो अक्सर कहता है कि भगवान की यही मर्जी थी ओर जब वह सफल हो जाता है तो कहता है कि यह उसकी अपनी उपलब्धि है। सफलता को अपनी उपलब्धि बताना मन की तामसिक वृत्ति को दर्शाता है। अपनी असफलता को भगवान के सिर मढना भी एक नासमझी भरी तामसिक स्थिति को दर्शाता है, क्योंकि तुम अपने कर्मों की जिम्मेदारी उठाने को तैयार नहीं हो। इसलिए दोनों को स्वीकार करो। जिस प्रकार हम दिन और रात को स्वाभाविक घटनाएँ मानते हैं, उसी प्रकार सफलता और विफलता भी जीवन की स्वाभाविक घटनाएँ हैं।

कर्मों के शुभकारी और लाभदायक परिणामों की आशा अवश्य रखो, लेकिन उनसे आसक्त मत बनो। जब तुम्हारे ऊपर सनक सवार हो जाती है तब तुम अपनी सजगता, अपनी रचनात्मकता खो बैठते हो। तुम्हारा दृष्टिकोण संकीर्ण हो जाता है। अगर एक नली के अन्दर से संसार को देखोगे तो सीमित दृश्य ही देख पाओगे। सनक में ऐसा ही होता है, मन एक ही चीज से चिपक जाता है। विषाद में लोग सिर्फ

दु:ख के बारे में सोचते हैं, और उल्लास में सिर्फ सुख के बारे में। ये सभी व्यवहार संकीर्ण-दृष्टि के द्योतक हैं।

जब भी कोई कर्म करो, उसे ठीक से करो। उसके फलस्वरूप तुम्हें जो कुछ भी मिलना होगा वह तुम्हें मिलेगा। पानी पियोगे तो प्यास जरूर बुझेगी। पूरी एक बाल्टी पानी पीने की आवश्यकता नहीं, एक गिलास ही पर्याप्त है। जहाँ तक मेरे अपने जीवन का सम्बन्ध है, मैं उस मार्ग पर चलना चाहता हूँ जिसपर चलने के लिए मुझे निर्देशित किया गया है। यह भी तो एक अपेक्षा है जो मुझे अपने आप से है। परिस्थितियाँ आती-जाती हैं, लेकिन अपेक्षाएँ किसी-न-किसी रूप में सदा बनी रहती हैं। जिस चीज का हमें ख्याल रखना है वह है फल के प्रति आसक्ति। अपने कार्यों को सजगतापूर्वक करते जाओ और सफलता-विफलता, हानि-लाभ पर ध्यान मत दो। अगर तुम अपने आप को सफलता और असफलता के बीच संतुलित कर पाओगे, तो वह जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि होगी। भगवद् गीता में श्री कृष्ण ने कहा है—*सिद्धयसिद्धयो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते*—सिद्धि और असिद्धि में, सफलता और असफलता में मन को संतुलित रखना ही योग है।

तुम अपने प्रयासों में सफल होते हो या नहीं, पर हमेशा द्रष्टा भाव बनाए रखो और अपने जीवन में समत्व की स्थिति को उत्पन्न होने दो। समत्व की यही अवस्था योग कहलाती है। जब मन संतुलित और संतुष्ट होता है तब तुम आनन्द का अनुभव करते हो। इसलिए सफलता और विफलता के पाश से अपने आपको मुक्त रखो। परिणाम पर नजर रखते हुए कर्म जरूर करो पर उस परिणाम से आसक्त मत हो जाओ।

जब तुम किसी परिणाम पर नजर रखते हो तो वह तुम्हारा लक्ष्य बन जाता है। अगर मैं एक अच्छा संन्यासी बनना चाहता हूँ, तो मुझे एक परिणाम की अपेक्षा है। यह अपेक्षा मेरे जीवन का लक्ष्य और प्रयोजन बन जाती है, जो मुझे पुरुषार्थ करने के लिए प्रेरित करती है। यदि मैं आज इस अपेक्षा को यह कहकर त्याग दूँ कि 'जो कुछ होना है, वह होकर रहेगा' तो मैं कभी अपने निर्दिष्ट पथ पर अग्रसर नहीं हो पाऊँगा। अनेकों व्यवधान आ जाएँगे। इसलिए हम सभी के लिए उचित यही है कि हम किसी अपेक्षा, किसी लक्ष्य को लेकर अपने मार्ग पर आगे बढ़ें और मार्ग में आने वाली सफलता या विफलता से विचलित न हों।

मध्यम मार्ग

आध्यात्मिक परम्पराएँ मध्यम मार्ग अपनाने के लिए कहती हैं। भगवान बुद्ध ने भी मध्यम मार्ग का ही प्रतिपादन किया था। जब तुम सड़क के न दायीं ओर चलते हो, न बायीं ओर, बल्कि ठीक बीचोबीच रहते हो, तब तुम दोनों ओर ध्यान रख पाते हो।

उपनिषदों ने इस मध्यम मार्ग को छुरे की धार के समान तीक्ष्ण और दुष्कर बताया है—*क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया*। इस मार्ग पर अत्यन्त सावधानी से चलना है, थोड़ी-

सी भी चूक होने पर तुम गिरकर लहू-लुहान हो जाओगे। अगर तुम्हारा ध्यान लक्ष्य से हटता है तो तुम्हारी यात्रा वहीं थम जाती है। तुम्हारी प्रेरणा शिथिल पड़ जाती है और तुम आगे नहीं बढ़ सकते। चाहे तुम दायीं ओर फिसलो या बायीं ओर, तुम्हारी यात्रा वहीं-की-वहीं समाप्त हो जाती है। लेकिन अगर तुम अपना संतुलन और समत्व बनाए रखते हुए, सावधानी और सजगता के साथ चलते रहो, तो अवश्य अपनी यात्रा पूरी कर लोगे। इसलिए समत्व जीवन का सबसे बड़ा गुण है। जब यह गुण जीवन में प्रबल होता है तब व्यक्ति न अपनी इच्छाओं से प्रभावित होता है और न कर्मों के फल के लिए कोई ललक या सनक रह जाती है। जीवन सुन्दर, सहज और संतुलित हो जाता है।

इसका अर्थ यह है कि हमें अपने मन की आदतों को बदलना होगा। बचपन में हम एक तरह की चीजों के लिए लालायित रहते हैं, बड़े होने पर हम दूसरी चीजों की लालसा रखते हैं। जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं, संसार के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदलता जाता है, हम अनुभवी और परिपक्व होते जाते हैं। जीवन की हर परिस्थिति में अपनी इच्छाओं और उन्हें पूरा करने की लालसा के प्रति सजग रहने का, उन्हें समझने का प्रयास करना चाहिए। इच्छा-पूर्ति की लालसा ही सुख या दुःख का कारण होती है और इसी वजह से हमारी सजगता स्वयं के प्रति केन्द्रित रहती है। लोग इतने आत्म-केन्द्रित हो जाते हैं कि वे अपनी कमजोरियों से छिपने का प्रयास करते हैं। यहाँ तक कि वे अपने भीतर के ज्ञान और प्रकाश से भी मुँह छिपाते हैं।

इस संसार में अगर कोई ऐसी वस्तु है जिससे हर मनुष्य भयभीत रहता है, तो वह है उसकी अपनी अन्तरात्मा का ज्ञान और प्रकाश। सभी प्रकाश की कामना करते हैं किन्तु जब प्रकाश से सामना होता है तब वे कहते हैं, 'बस, बस, बहुत हुआ!' अर्जुन के साथ ऐसा ही हुआ था। उसने युद्ध के मैदान में श्रीकृष्ण से अनुरोध किया, 'मुझे अपने ब्रह्माण्डीय स्वरूप का दर्शन कराइये।' और जब श्रीकृष्ण ने अपने विराट् स्वरूप को प्रकट किया तो अर्जुन बोल उठा—'बस, बस! अब अपने सामान्य रूप में आ जाइए। मैं उसी रूप को ज्यादा पसन्द करता हूँ, क्योंकि वह मेरे जैसा है, उसे मैं समझ सकता हूँ। आपके इस देदीप्यमान्, विराट् स्वरूप के प्रकाश में मेरी आँखें चौंधिया रही हैं, यह मेरी समझ के बाहर है।'

सत्त्व, रजस् और तमस् के तीन गुण कर्म के साथ जुड़ते हैं तथा सुख-दुःख के अनुभवों को जन्म देते हैं। हम लोग सुख और दुःख को सफलता और विफलता के साथ जोड़ते हैं। पर इन दोनों में संतुलन पाना ही योग है। कर्मों की सफलता और विफलता में भी यदि समभाव बना रहे तो यह कर्मयोग का परिचायक है। यदि सफलता और विफलता में बुद्धि का संतुलन बना रहता है तो यह ज्ञानयोग है। विषयों की ओर प्रवाहित हो रही तुम्हारी भावनाएँ जब ईश्वराभिमुख होने लगती हैं, जब उनमें संतुलन आता है तो यह भक्तियोग की शुरुआत है। और अगर यह संतुलन का सिद्धान्त तुम अपने शरीर पर आजमाओगे तो तुम हठयोग में प्रवीण हो सकोगे।

संतुलन किसी विशेष योग का अभ्यास नहीं, बल्कि मन की एक अवस्था है। योग का प्रारम्भ संतुलन और समत्व की प्राप्ति से होता है। आसन और प्राणायाम शारीरिक अभ्यास हैं, बाह्य साधना के अंग हैं। आन्तरिक साधना का सम्बन्ध समत्व की प्राप्ति से होना चाहिए, जिसके लिए तुम जप, अंतर्मौन, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, कुण्डलिनी योग या क्रिया योग जैसी विधियाँ अपना सकते हो। फिर एक समय ऐसा आता है जब हमें ज्ञान प्राप्त हो जाता है और हम अपने कर्मों को योग से जोड़ पाते हैं।

कर्मयोग सिद्ध करने के लिए तुम्हें पहले मन, गुणों, मनोदशाओं, सुख और दु:ख को समझना होगा। श्री स्वामीजी कहते हैं कि कर्मयोग हमें मन की प्रतिक्रियाओं से अप्रभावित रहना सिखाता है। विभिन्न परिस्थितियों में मन में जो अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होती हैं, उनसे स्वतंत्र रहो। एक नकारात्मक भावनात्मक प्रतिक्रिया से तुम्हें दु:ख होता है, इसलिए कष्ट भोगते समय भी भावुक मत बनो। जैसे ही तुम भावुक बनते हो, तुम्हारी मनोदशा बदल जाती है और तुम मानसिक स्पष्टता और सूझ-बूझ खो देते हो। लेकिन अगर तुम अपना संतुलन बनाए रख सको तब तुम्हारी मनोदशा बदलेगी नहीं और तुम परिस्थिति को सम्हाल सकोगे। अगर तुम्हें कोई चपत लगाता है और तुम अपना संतुलन बनाए रखते हो, तब तुम दूसरे व्यक्ति को यह साबित कर सकोगे कि उसने चपत लगाकर गलती की और वह भी इस बात को समझ जाएगा। लेकिन अगर तुम उल्टा एक चाँटा मार देते हो तो तुम केवल झगड़े में उलझोगे जिसमें वही जीतेगा जो ज्यादा ताकतवर होगा। इसलिए यह जरूरी है कि हम अपने मन, भावनाओं और इन्द्रियों की प्रतिक्रियाओं को सम्हाल सकें। तभी हमारे कर्म कर्मयोग में बदल सकेंगे।

समभाव प्राप्त कर लेने के बाद मनुष्य अपने आप को विषय-सुख की कामनाओं से मुक्त रख सकता है और इस प्रकार वह दु:ख और कष्ट के अनुभवों से भी मुक्त हो जाता है। कर्मों के परिणाम जो भी हों, उनसे कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि वे तुम्हारे नियंत्रण के बाहर हैं। हाँ, इतना जरूर है कि नकारात्मक कर्म का नकारात्मक परिणाम और सकारात्मक कर्म का सकारात्मक परिणाम होगा।

–'कर्म और कर्मयोग' से उद्धृत

जीवन को जीना है

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

इस संसार में जन्म से मृत्युपर्यन्त आप कर्म करने के लिये बाध्य हैं। यदि आपकी कर्म करने की इच्छा न होती, तो आप जन्म ही क्यों लेते? चूँकि अपने जीवन के निर्माता आप स्वयं हैं, आपको यह दृढ़ निश्चय करना है कि आप अपने लिये किस तरह का जीवन निर्मित करने जा रहे हैं। याद रखिये, अपने लिये नरक अथवा स्वर्ग का निर्माण आप स्वयं करते हैं।

जो भी जीवन आपको मिला है वह एक माध्यम है, जिसके द्वारा आपको अपनी प्रतिभाओं को निखारना तथा अपार प्रसुप्त क्षमताओं को जागृत करना है। जीवन महान् अवसरों का खजाना है, परन्तु जब तक हम इस सत्य को समझ पाते हैं, अधिकांश जीवन बीत चुका होता है। जीवन के रहस्य, आनन्द, सौन्दर्य—सभी कुछ इसी जीवन में आपकी पहुँच में हैं, लेकिन विवेक की कमी के कारण आप इनमें से अधिकांश को चूक जाते हैं।

इस सत्य को एक दृष्टांत से अच्छी तरह समझा जा सकता है। एक दिन सूर्योदय से काफी समय पूर्व एक मछुआरा नदी पर गया। किनारे पर उसके पैरों का किसी कड़े पदार्थ से स्पर्श हुआ। उसने उसे उठाकर अंधकार में हाथों से टटोला। उसे लगा कि पत्थरों से भरा थैला उसके हाथ लगा है। वह सुबह के प्रकाश की प्रतीक्षा कर रहा था ताकि अपना दैनिक कार्य प्रारम्भ कर सके। विचारों में मग्न लापरवाही से उसने थैले में से एक पत्थर निकाल कर नदी के जल में फेंक दिया। पत्थर के पानी में गिरने की आवाज उसे अच्छी लगी। उसने एक-के-बाद-एक पत्थर फेंकना जारी रखा।

जब तक सुबह के सूरज का प्रकाश चारों ओर फैला, वह सारे पत्थर पानी में फेंक चुका था। केवल अन्तिम पत्थर उसके हाथों में बचा था। जब उसने देखा कि जिन्हें वह पत्थर समझकर अभी तक पानी में फेंक रहा था वे पत्थर नहीं चमचमाते हीरे थे तो उसका दिल बैठ गया। अब वह अपनी भारी भूल के लिये स्वयं को कोसने लगा। अपने हाथ लगे

असीम खजाने को वह स्वयं अपनी गलती से खो बैठा था। वह चीखने-चिल्लाने लगा और अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठा। जो धन उसे एकाएक धनी बनाने जा रहा था, उसे उसने अपनी नासमझी से पानी में फेंक दिया था।

उस मछुआरे की तरह हममें से अधिकांश लोगों के जीवन में भी अंधकार भरा पड़ा है। समय बीतता जाता है, परन्तु आशा का सूर्य कभी उगता ही नहीं। हीरों की तरह हम भी अपने जीवन के अवसरों का दुरुपयोग करते रहते हैं तथा कभी उनके महत्त्व का अनुभव नहीं करते। जीवन हीरों से भरा झोला है, परन्तु अपनी नासमझी के कारण हम उसे मूल्यहीन पत्थरों से भरे थैले से अधिक कुछ नहीं समझते। यदि आप समझदारी से देखें तो पायेंगे कि जीवन में अधिकांशत: शुभ और अच्छा ही होता है, लेकिन जब तक आप इसे समझ पाते हैं, आप खजाने से वंचित हो जाते हैं।

जीवन भर आप अपने चिंतन और विचारों के अनुरूप बदलते रहते हैं। जीवन की हर घटना के प्रति आपका जैसा दृष्टिकोण रहता है, उसी के अनुरूप या तो आप कुछ बन जाते हैं या बर्बाद हो जाते हैं। आपके सोचने का ढंग ही आपके जीवन को रूप तथा दिशा प्रदान करता है तथा आपके भीतर आत्मा के प्रकाश को आलोकित करता है। यही आपके आगामी विकास का मार्ग भी प्रशस्त करता है। जैसे ही आप इस तथ्य को समझेंगे, अपने सोच-विचार के ढंग में आमूल परिवर्तन लायेंगे। जीवन को नये दृष्टिकोण से देखेंगे।

देखिये, आपकी समस्या की जड़ आपके पति, पत्नी, बच्चे, रिश्तेदार, घर, पड़ोसी, धन, दफ्तर, सुख या दु:ख किसी में नहीं, बल्कि स्वयं आपके भीतर होती है। जरा स्वयं को तो बदलिये, फिर आप देखेंगे कि आपका समस्त जीवन और उसका अर्थ ही बदल जाता है। जैसे सूर्य के प्रकाश से समूचा विश्व आलोकित हो उठता है, उसी प्रकार समझबूझ भरे विचार एवं विवेक द्वारा आपका जीवन भी एक नये प्रकाश से भर जायेगा।

बहुधा हम सोचते हैं कि वह सब कुछ जो सामान्य जीवन-शैली के विपरीत है, वही धार्मिक होता है। धर्म के नाम पर हमें जीवन के निषेध की शिक्षा दी जाती है। कदम-कदम पर हमें अपने क्रिया-कलापों के तथाकथित विपरीत परिणामों तथा हमारे मरणोपरांत जीवन पर पड़ने वाले उनके प्रभावों के बारे में सचेत किया जाता है। परन्तु जरा सोचिये कि जब आप वर्तमान जीवन को सार्थक नहीं कर पाते तो मरणोपरांत जीवन पर पड़ने वाले उनके प्रभावों को कैसे सम्हालेंगे? मृत्यु की तैयारी भी हमें इसी जीवन के माध्यम से करनी है। यदि मरणोपरांत कोई जीवन है, तो इस बात की क्या गारंटी है कि वहाँ भी आपके समक्ष ये ही समस्यायें नहीं आयेंगी। आप उनसे कदापि भाग नहीं सकते, भले ही वर्तमान जीवन का निषेध करें या त्याग।

वर्तमान जीवन को सुअवसर मानना, उसकी कद्र करना सर्वश्रेष्ठ साधना है। जीवन के हर अवसर का भरपूर लाभ उठाना वह महानतम श्रद्धांजलि है जिसे अपनी आत्मा को अर्पित कर सकते हो। जो जीवन को चूकता है, वह शेष सब कुछ चूक जाता है। परन्तु लोगों का व्यवहार तथा मनोवृत्ति इसके सर्वथा विपरीत होती है। वे जीवन को कठिनाइयों तथा परीक्षाओं से भरी एक दुर्गम यात्रा मानने की गलती करते हैं। बचपन और युवावस्था में उचित शिक्षा-दीक्षा द्वारा भावी जीवन की सुदृढ़ आधारशिला रखने की आवश्यकता पर कोई ध्यान ही नहीं देता। स्कूल-कॉलेज में आपको लौकिक शिक्षा के लिये भेजा जाता है, पर कटु सत्य यह है कि आप वहाँ कुछ भी नहीं सीखते। जब भी आपका कठिनाइयों से सामना होता है, आप टूट जाते हैं। रोने-धोने, चीखने-चिल्लाने और दोषारोपण करने का अन्तहीन दौर प्रारम्भ हो जाता है। आप निराशा भरे जीवन को अर्थहीन मानने लगते हैं।

यदि जीवन ही आपको निराश, दु:खी तथा उद्देश्यहीन बनाता है, तो इसका कारण स्वयं आपके सोचने-समझने का ढंग होता है। यदि आपको जीने का सही ढंग मालूम हो तो जीवन आप पर अनगिनत सुख-आनन्द की वर्षा करता है। लेकिन इस ढंग को जानने, समझने और उससे आनन्द प्राप्त करने के लिये आपको अपनी चिंतनशैली को पूरी तरह बदलना होगा।

आपको यही सब समझाने के उद्देश्य से कर्म संन्यास की व्यवस्था की गई है। कर्म संन्यास में जीवन को किसी भी रूप में त्यागने अथवा नकारने की बात नहीं है।

कर्म संन्यास आपको जीवन को पीठ दिखाने की प्रेरणा नहीं देता, बल्कि आपसे जीवन की परिस्थितियों का डटकर मुकाबला करने की अपेक्षा रखता है। संन्यास पलायन का विरोधी है। वह जीवन का समग्र रूप में आलिंगन करने की शिक्षा देता है। कर्म संन्यास व्यक्ति को उसके आध्यात्मिक लक्ष्य और जीवन दिशा का ज्ञान कराता है। आध्यात्मिक उत्थान के लिये व्यक्ति को जीवन की हर परिस्थिति और घटना को अच्छी तरह समझना आवश्यक है। अपने लक्ष्य, आदर्श और दृष्टिकोण में समुचित सुधार लाकर कर्म संन्यासी जीवन की हर गतिविधि में सक्रिय रूप से हिस्सा लेता है।

हमारा लक्ष्य ही हमारे चरित्र का निर्माण करता है, हमें एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करता है। जीवन के अन्तिम विश्लेषण में यही कहा जा सकता है कि जो कुछ आप करते हैं, उसका उतना महत्त्व नहीं होता जितना उसके पीछे उद्देश्य का होता है। अपने विकास के लिये यह बहुत आवश्यक है कि आप जीवन को सही अर्थों में जीयें। इसके साथ ही हर क्षण आपका लक्ष्य आपके समक्ष स्पष्ट बना रहे। एक वेश्या के धंधे का उद्देश्य भी महान् हो सकता है। इसके विपरीत किसी मंदिर के पुजारी का, जो प्रतिदिन प्रतिमा का पूजन-अर्चन करता है, उद्देश्य पवित्र नहीं भी हो सकता है। एक डाकू हजारों को लूटता हो, पर हो सकता है वह यह सब कुछ गरीबों को भोजन एवं वस्त्र उपलब्ध कराने और उनकी भलाई के लिये करता हो। एक धनी सेठ भले ही अनेकों परोपकारी संस्थाओं को अपना आर्थिक योगदान प्रदान करे, लेकिन यह जरूरी नहीं कि उसके इन कार्यों का उद्देश्य परोपकार की शुद्ध भावना ही हो।

कर्म संन्यास का प्रारम्भ जीवन को एक नई दिशा और लक्ष्य प्रदान करने से होता है। इस नये लक्ष्य का सम्बन्ध ऐसी समझ और दृष्टि से है जो जीवन की हर छोटी-बड़ी घटना को जीवन की अनंत यात्रा में मील का पत्थर मानकर उसे पूर्णतया स्वीकार करती है।

– 'कर्म संन्यास' से उद्धृत

भटकाव

एक आदमी एक बड़े मकान के सामने पहुँचा तो देखा कि मकान के बाहर मुख्य द्वार पर लिखा हुआ था, 'अंदर आओ।' अंदर चला गया तो फिर लिखा मिला कि अब दाहिनी ओर जाओ। जब दाहिनी ओर गया तो आगे जाकर देखा कि एक बोर्ड पर लिखा था 'अब ऊपर जाओ।' वह ऊपर चला गया। वहाँ जाकर देखा तो लिखा मिला कि सीधे जाकर फिर बायें घूम जाओ। बायें जाने पर एक बड़े कमरे में पहुँच गया। वहाँ लिखा था नीचे जाओ। नीचे गया तो वहाँ लिखा मिला, 'क्यों इधर-उधर भटक रहे हो? यह अमूल्य जीवन इधर-उधर भटककर समाप्त करने के लिए नहीं है। जीवन की सही दिशा और लक्ष्य को पहचानो।'

यौगिक अध्ययन के अनमोल अनुभव

गंगा दर्शन में फरवरी से मई 2017 तक चातुर्मासिक यौगिक अध्ययन सत्र संचालित किया गया जिसमें 32 विद्यार्थियों ने भाग लिया। उनके कुछ अनुभव यहाँ प्रस्तुत हैं–

यहाँ आकर इतना कुछ सीखा, जैसे आसन, प्राणायाम, मुद्राएँ, योगनिद्रा, अंतर्मौन, अजपाजप आदि, कि जिसे जीवन में अच्छी तरह से उतारने, समझने, महसूस करने और अभ्यास करने में कम-से-कम वर्षों लगेंगे। ज्ञान तो बहुत मिला है, अब यह मेरी क्षमता पर है कि मैं अपने जीवन में कितना उतार पाता हूँ।

एक चीज जो मैंने यहाँ बहुत अच्छी सीखी वह है सजगता। मुझे यहाँ आकर महसूस हुआ कि मुझमें सजगता की बहुत कमी है और सजगता किसी भी क्षेत्र में उन्नति करने की कुंजी है। इसलिए मैं सजगता को अपने दैनिक जीवन में ज्यादा-से-ज्यादा लाने की कोशिश करूँगा। दूसरी चीज मुझे योग निद्रा बहुत अच्छी लगी, खास तौर पर उसमें लिया जाने वाला संकल्प जो आपको याद दिलाता है कि आपकी मंजिल क्या है।

यहाँ रहकर मुझे समझ में आया है कि योग का क्षेत्र सिर्फ शारीरिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक है। योग एक जीवनशैली है। हर व्यक्ति को, चाहे वह पूर्ण रूप से स्वस्थ ही क्यों न हो, योग को अपने जीवन में जरूर उतारना चाहिए।

– मुकुन्द सिंह, कोटा

इस आश्रम में कर्म को पहला स्थान दिया गया है। कर्म ही धर्म, कर्म ही पूजा और कर्म ही सत्य। शुरू के दिनों में मुझे लगा कि यहाँ सेवा का नाम देकर छोटा-बड़ा हर कार्य कराया जाता है। मैं सोच रहा था कि मैं कहाँ फँस गया। लेकिन कुछ दिन बीतने के बाद एहसास हुआ कि कर्म ही जीवन है, बिना कर्म किए जीवन जीना बहुत मुश्किल है। जैसे-जैसे दिन बीतते गए वैसे मेरी सेवा करने में रुचि बढ़ती गई। जिस भी विभाग में सेवा करने जाता, वहाँ पूरी तरह मन लगाकर कार्य आरम्भ कर देता। इस प्रकार मैंने धीरे-धीरे जाना कि यौगिक जीवन कैसे जिया जाता है।

आश्रम और बाहर के जीवन में बहुत अंतर है। एक आकाश है तो दूसरी पृथ्वी। आश्रम में खाने-पीने से लेकर सोने-उठने का समय निर्धारित होता है। ऐसे अनुशासनपूर्ण वातावरण में रहते हुए हमें योग के छः अंगों—हठयोग, राजयोग, क्रियायोग, कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग से परिचित कराया गया। मैं तो यही कहूँगा कि अगर हमें जीवन सचमुच जीना है तो आश्रम में जाकर कुछ समय जरूर व्यतीत करना चाहिए।

—अंकित कुमार, जमशेदपुर

सत्यानन्द योग परम्परा में योग का प्रशिक्षण प्राप्त कर मैं अपने आपको बहुत भाग्यशाली महसूस कर रहा हूँ। मुझे ऐसा लग रहा है कि जैसे मुझे हीरा मिल गया हो। दोनों में से किसी एक का चुनाव करना हो तो मैं सत्यानन्द योग को ही प्राथमिकता दूँगा।

यहाँ योग सीखने के बाद मुझे आसन-प्राणायाम करने में आनन्द आने लगा है जिससे मेरी निरंतरता बढ़ने लगी है। मानसिक स्तर पर मैं कह सकता हूँ कि कर्मयोग से मेरी बहुत-सी मानसिक गाँठें पिघल गई हैं और काफी हल्कापन महसूस कर रहा हूँ। शाम के भजन-कीर्तन से भी मुझे बहुत लाभ मिला है। मेरे चित्त में जो पुराने संस्कार दबे पड़े थे वे एक सिनेमा की तरह मन में आकर निकलते जाते हैं। अब मैं अपने आपको पहले से कहीं अधिक खुश पाता हूँ।

—संजीव कुमार त्यागी, गाज़ियाबाद

आश्रम में चार महीने रहने के बाद मेरे अन्दर जो सबसे बड़ा परिवर्तन आया वह यह कि जो कार्य मैं करना पसंद नहीं करती थी, उस कार्य में भी मेरा मन लगने लगा।

अब मेरा हाल कुछ ऐसा है कि कोई कार्य ऐसा नहीं जो मैं न कर पाऊँ, वह छोटे-से-छोटा काम हो या भारी-से-भारी। यह मेरे जीवन का सबसे बड़ा अनुभव था और इसे मैं अपने जीवनकाल में कायम रखूँगी।

इस आश्रम में चार महीने गुजारने के बाद मेरे मन से यह आवाज आती है कि यहाँ से जाते-जाते हम 32 विद्यार्थी अपने जीवन में एक अच्छा बेटा, बेटी, माता, पिता, पत्नी, पति, भाई, बहन और एक अच्छा मनुष्य बन पाएँगे तथा जीवन के हर लक्ष्य को आसानी से पा सकेंगे।

–शिवांजलि, मुज़फ्फरपुर

सत्र की शुरुआत में जब आसन कक्षा में पवनमुक्तासन की पहली शृंखला सिखाई जाने लगी तो मुझे ये अभ्यास एकदम बेकार लगते थे। पर जैसे-जैसे हमारी कक्षा आगे बढ़ने लगी तो अनुभव हुआ कि इन अभ्यासों में निपुण हुए बिना आगे नहीं बढ़ सकते, ये उच्च आसनों के आधार हैं। पहले ध्यान के आसन में बैठते ही 4-5 मिनट में पैर में दर्द शुरू हो जाता था, पर अब 25-30 मिनट तक एक आसन में आराम से बैठ सकता हूँ।

एक और चीज जिसपर शुरू से जोर दिया जाता था–सजगता। सभी शिक्षक और स्वामी इसी शब्द को दुहराते रहते थे और मुझे यह बहुत बकवास चीज लगती थी। पर अब जाकर पता चला है कि सजगता हमारे जीवन में कितनी अहम भूमिका निभाती है। न सिर्फ आसन की कक्षा में, बल्कि हर समय सजग रहना चाहिए। पहले जिस योग सेन्टर में मैं योग सीखने जाता था, वहाँ सिर्फ शारीरिक रूप से योग को देखा जाता था, पर यहाँ योग को एक जीवन पद्धति के रूप में अपनाने की शिक्षा मिली।

–विशाल कुमार सोनी, जमशेदपुर

जब मैं सत्र के लिए आश्रम आई तो बहुत डर गई थी। यहाँ का माहौल बाहर के माहौल से बिल्कुल अलग था। इतने सारे नियम-अनुशासन थे। पहला महीना चिड़चिड़ेपन और गुस्से में निकाला। कर्मयोग भी बेमन से करती थी। मेरे अंदर भावना थी कि यह तो दूसरे लोगों का काम है और मैं इतनी देर तक क्यों करूँ। मौन के नियम से भी मैं नाखुश थी क्योंकि मैं बहुत ज्यादा बकबक करती हूँ।

जब दूसरा महीना आया तो मुझमें थोड़ा-सा बदलाव था। कर्मयोग में थोड़ा मन लगने लगा, एकाग्रता बढ़ी। पहले काम से भागती थी, पर अब कोशिश करने लगी

कि सेवा अच्छे से और मन लगाकर करनी है। मौन का प्रयोजन भी मुझे समझ आ रहा था, कि ज्यादा बोलने से हमारी ऊर्जा बर्बाद होती है। ऊर्जा बचाकर मैं दूसरे कार्यों में उपयोग कर सकती हूँ। तीसरा महीने आते-आते इतना बदलाव आया कि मुझे ख्याल ही नहीं रहा कि मुझे धूल से एलर्जी भी है। अब मैं खुद से सफाई वाले काम लेने लगी। सारी सेवा एकाग्रता के साथ करने लगी। एक-एक मिनट कितना कीमती है, यह समझ में आने लगा।

मेरा आत्मविश्वास बढ़ गया है। एकाग्रता और सजगता की जो कमी थी, उसमें सुधार कर रही हूँ और आगे भी करते रहने का प्रयास करूँगी। मैं अपने इस बदलाव को देखकर बहुत खुश हूँ। घर लौटकर मम्मी-पापा के काम में हाथ बटाऊँगी, जो चीजें यहाँ सीखी हैं अपने छोटे भाई-बहन को सिखाऊँगी। मैं आश्रम आती रहूँगी और घर के बाकी लोगों को भी लाने का प्रयास करूँगी क्योंकि मेरा यहाँ की सारी चीजों से लगाव हो गया है।

– नताशा कुमारी, पटना

मैं जब फरवरी 2017 में आश्रम आया तो बहुत चिंता करता रहता था, परन्तु यह समस्या धीरे-धीरे कम होती गई। मानसिक स्वास्थ्य का लाभ हुआ। घबराहट कम हो गई, तनाव कम हो गया, एकाग्रता का विकास हुआ। शारीरिक लाभ भी बहुत हुआ। नींद अच्छी आती है, आलस्य कम हो गया।

मैं स्वयं के प्रति बहुत सजग भी हो गया हूँ। मुझे क्या अच्छा लगता है, क्या नहीं, मुझे जीवन में क्या करना चाहिए, इसके प्रति एक स्पष्ट सोच बन गई है। आश्रम जीवन में बहुत-सी चीजें सीखने को मिलीं, और कक्षाओं में भी। ध्यान के अभ्यास में अच्छे अनुभव हुए। अंतर्मौन का अभ्यास मेरे लिए बहुत उपयोगी साबित हुआ। इसका अभ्यास करने पर मन बहुत शांत होने लगा। अब आश्रम में कुछ दिन और रहने का मन कर रहा है।

– नंदन कुमार, मुंगेर

सच कहूँ तो यह मेरी मजबूरी थी कि मुझे यहाँ आना पड़ा। पिताजी ने यहाँ आने के लिए प्रेरित किया, मेरी अपनी इच्छा नहीं थी। घर पर मैं कोई काम नहीं करता था, अपना समय ज्यादातर अपने दोस्तों के साथ मस्ती-मजाक में बिताता था। यहाँ

आकर देखा कि कर्मयोग आश्रम जीवन का आधार है। शुरू में यही सोचता कि आश्रम वालों ने हमलोगों से काम कराने की बहुत अच्छी स्कीम निकाली है कि काम को भी योग का हिस्सा बना दिया! मेरा न सेवा में मन लगता, न संध्या कार्यक्रम के भजन-कीर्तन में, न सुंदरकाण्ड पाठ में। सोचता कि काला-पानी की सजा मिली है।

मेरे जीवन में एक नया मोड़ आया योगनिद्रा के अभ्यास से। मैंने योगनिद्रा शब्द पहली बार यहीं आकर सुना था। मेरे मन में यही सवाल था कि निद्रा के साथ योग का क्या ताल्लुक है। लेकिन यह सवाल ज्यादा दिन नहीं रहा, क्योंकि मैंने अपने आप महसूस कर इसका जवाब पा लिया। योगनिद्रा के अभ्यास से कुछ ऐसे अनुभव हुए कि मेरी जिंदगी ही बदल गई। मेरी समझ में यह बात आने लगी कि मेरा अब तक का जीवन अंधेरे में था, जिसका कोई लक्ष्य नहीं था। मैं एक इंसान नहीं, बस मनुष्य रूप में जानवर की तरह इस धरती पर बोझ बना हुआ था।

धीरे-धीरे कर्मयोग का महत्त्व समझ आने लगा। कर्मयोग तो योग का प्राण है। इससे आपके अंदर ऐसी ऊर्जा की उत्पत्ति होती है जिससे आपको कभी यह महसूस नहीं होगा कि आप थके हुए हैं, आप हमेशा चुस्त और दुरुस्त रहेंगे। अपने बारे में कहूँ तो मैं बहुत आलसी था, घर में सुबह नौ बजे जगता था, कोई भी काम नहीं करता था, फिर भी अपने आपको थका हुआ महसूस करता था। लेकिन अब मैं लगातार सात-आठ घण्टे भी काम करूँ तो थकान महसूस नहीं होती।

मुझे इस आश्रम से जो चीज मिली है वह कहीं भी लाखों पैसे खर्च करने पर भी मुझे प्राप्त नहीं होती। वह चीज है आत्मज्ञान। पहले कोई मुझे लाख समझाता तो भी मेरा मन नहीं समझता था, लेकिन आज ऐसी स्थिति है कि मेरा मन ही मुझे समझाता है कि तुम यह सही नहीं, गलत कर रहे हो, और तब मैं सजग हो जाता हूँ। जब किसी इंसान को खुद उसकी आत्मा ही गलत चीज की ओर जाने से रोके तो यह आत्मज्ञान नहीं तो और क्या है। इस आश्रम ने मुझे एक नया जन्म दिया है और इस जन्म में मैं एक इंसान हूँ, धरती पर बोझ नहीं। मुझे मेरा लक्ष्य मिल चुका है। इतना तो समझ चुका हूँ कि अब कोई भी काम मैं कर सकता हूँ। सच कहूँ तो मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा कि मैं इतना बदल कैसे गया। ये सारी चीजें चमत्कार-सी लगती हैं। लगता है यहाँ कोई दिव्य शक्ति है जिसने अपना आशीर्वाद देकर अपनी छत्रछाया में मुझे जानवर से इंसान बनाया।

– रोहित कुमार, खगड़िया

सत्र के समापन पर विद्यार्थियों ने सत्यम् वाटिका में एक प्रेरक नृत्य-नाटिका भी प्रस्तुत की जिसमें उन्होंने दर्शाया कि किस प्रकार मनुष्य के नकारात्मक व्यवहार से प्रकृति का पतन हो रहा है और कैसे एक यौगिक जीवनशैली को अपनाकर सामाजिक एवं प्राकृतिक वातावरण का पुनरुद्धार हो सकता है। नाटिका के शब्द आगे प्रस्तुत हैं–

प्रकृति का पुनरुद्धार

यह प्रकृति है एक समर्पण, एक जीवित सौन्दर्य का दर्पण
पर भूख, लोभ और क्रोध से धरती का हो रहा है विनाश
प्रेम, सद्भाव और सम्मान का हट रहा है प्रकाश
लूट, हत्या और बलात्कार से त्रासित है मानवता
इस धरा पर चारों ओर दिखलाई देती बस क्रूरता
अब नहीं है मुझे जीना, यहाँ न खुशियाँ हैं न है उमंग
काश एक दिन आएगा जब उभरेंगे इन्द्रधनुषी रंग
समय का चक्र चलता है, हर परिस्थिति का वक्त बदलता है
आया नया उजाला, नयी दिशा, नयी छोर,
उगता सूरज मोड़े हमें अध्यात्म की ओर
रोशनी के साथ होता है ऊर्जा का विस्तार
बढ़ती है अच्छाई, कम होता है विकार
सेवा का बहुमूल्य अमृत, मानवता की तृष्णा बुझाता है
निष्काम भाव से जो काम करे, वही सच्चा सेवक कहलाता है
दान से अलंकृत हस्त, करुणा का भाव बढ़ाता है
जितना बाँटो उतना मिलता है, जीवन का टूटा तार भी जुड़ जाता है
स्नेह से भरा शुचि हृदय, आपसी भाईचारा और प्रेम बढ़ाता है
जिसे ढूँढे हम बाहर जाकर, हमारा मन ही मंदिर कहलाता है
आनंद यहीं, है स्वर्ग यहीं, सेवा, प्रेम, दान का पुंज यहीं
यह परमहंसजी की शिक्षा है जिसका पालन करना ही हमारी दीक्षा है।

नैष्कर्म्य की ओर

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मेरे अनेकों मित्र हैं, अनेकों शिष्य, अनेकों भक्त। मैं पिछले पैंतीस-चालीस वर्ष के बीच की बातें कह रहा हूँ। बारह वर्ष गुरु भाइयों के बीच रहा। आठ बरस भक्तों, शिष्यों, सत्संगियों ओर मित्रों के बीच घूमा। अब लगभग बारह वर्षों से अभी तक शिष्यों के साथ रहना पड़ता है।

अपने पास सभी लोग आते हैं। सबसे मैं एक ही बात पूछता हूँ, सबमें एक ही बात खोजता हूँ कि हर एक क्या चाहता है।

मैंने बहुतों को साफ-साफ पूछा कि क्या बनना चाहते हो? बहुतों के चरित्र-लक्षणों से जानना चाहा कि वे क्या चाहते हैं? बहुतों के रोग-लक्षणों से जानने का यत्न किया कि वे क्या चाहते हैं? सुखी-दु:खी, निर्धन-अमीर, शिक्षित-निरक्षर, मजदूर याने हर प्रकार के लोगों से उनकी मुख्य इच्छा जाननी चाही।

कोई ऐसा न मिला जो कुछ न बनना चाहता हो। महत्त्वाकांक्षाओं के एक तथा अनेक आवरण में लिपटा हुआ, इन्सान अपने चारों ओर उसी की प्रतिछवि देख रहा है। कर्म, विचार और फल ऐसा लगता है मानो इन्हीं अरमानों के वंशज हैं। महत्त्वाकांक्षाओं के हवाई घोड़ों पर सवार प्रत्येक आदमी बेतहाशा फिरता-सा जा रहा है। अपने को खोजा तो ठीक एक उल्टा स्वर पाया। न पाना चाहा, न बनना

चाहा। जो मिला तो ठीक और चला जाय तो ठीक।

आज इसी स्पष्ट उदासीनता के मध्य में खड़ा हूँ और प्रतीत हो रहा है कि कर्म, विचार और फल का आधार महत्त्वाकांक्षा नहीं, बल्कि जगमगाता अन्त:करण होना चाहिए। महत्त्वाकांक्षाओं की सीमा जहाँ समाप्त होती है वहाँ तटस्थता का संगीतमय प्रदेश फैला होता है, अनासक्ति की धूप खिली होती है, ऐश्वर्य के फूल खिले रहते हैं। विभूति के आंगन में ऋद्धि, सिद्धि, बुद्धि—तीनों नित्य-निरन्तर पूर्णता के राग में आनन्दमंगल के गीत गाते हैं। तटस्थता की इस भूमि का न ओर है न छोर। हल्की धूप यहाँ छिपती नहीं, रात यहाँ होती नहीं। यहाँ खेतों में अन्न बहुत है और खलिहान भरे हैं। गायें यहाँ मन भर दूध देती हैं। यहाँ सुन्दर-सुन्दर बालक, सुन्दर-सुन्दर बालिकायें और मनोहर नर-नारी हैं।

आज भी मैं कर्म, विचार और फल के तीन स्पष्ट संसार देखता हूँ। एक संसार है महत्त्वाकांक्षाओं का, दूसरा है तटस्थता का, तीसरा है निष्कर्मता का। तटस्थता के आयाम पर खड़े होकर मैं नैष्कर्म्य की भूमि की ओर जैसे-जैसे बढ़ता जा रहा हूँ वैसे-वैसे विश्व चेतना, परम ऐश्वर्य और तीनों विभूतियाँ मेरी ओर सिमटती चली आ रही हैं।

इसीलिए मैं पुकार-पुकार कर कहता हूँ कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों योग के आश्रित हैं।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

सत्यम् गाथा–योग नगरी मुंगेर

पृष्ठ 20

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती तथा श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को समर्पित सत्यम् गाथाएँ उनकी आध्यात्मिक एवं यौगिक शिक्षाओं को सरल, रोचक ढंग से दुनियाभर के लोगों तक पहुँचाने का माध्यम हैं।

द्वितीय अन्तरराष्ट्रीय योग दिवस के अवसर पर बिहार योग विद्यालय की गतिविधियों पर रिपोर्टिंग करने के लिए एक पत्रकार को मुंगेर भेजा जाता है। मुंगेर आकर वह देखता है कि पूरी नगरी एक विशाल योग क्लासरूम में परिवर्तित हो गई है जहाँ के सब शिक्षक नन्हे बच्चे और कर्मठ युवक-युवतियाँ हैं। 'योग नगरी' के इन 'योग राजदूतों' का अनुसरण करते हुए वह अनेक आश्चर्यों का सामना करता है और अंतत: एक सहज, प्रेरक और मंगलकारी यौगिक जीवनशैली से परिचित होता है।

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

वेबसाइट

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट में सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

योगा एवं योगविद्या वेबसाइट

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ निम्नांकित वेबसाइट पर उपलब्ध हैं–

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ अब IOS उपकरणों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं। इस एप्प को निम्नांकित वेबसाइट से डाउनलोड किया जा सकता है–
https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786
यह एप्प बिहार योग विद्यालय द्वारा सभी योग साधकों के लिए प्रसाद स्वरूप है।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/16-18
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2017

अक्टूबर 1-30	प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण (अंग्रेजी)
अक्टूबर 2- जनवरी 28	चातुर्मासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 1 (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 2 एवं तत्त्व शुद्धि (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 1-षट्कर्म का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 2-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 1- जनवरी 30 2018	यौगिक जीवनशैली का अनुभव (विदेशी प्रतिभागियों के लिए)
दिसम्बर 11-15	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 1-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 2-प्रत्याहार का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।